प्रसंग - प.पू. गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज ससंघ (36 पिच्छि) का गुजरात प्रांत की राजधानी गाँधीनगर चातुर्मास के पावन अवसर पर

-: कृति :-

सम्यग्दर्शन

-: लेखक :-

परम पूज्य गणाचार्य

श्री 108 विराग सागर जी महाराज

-: संपादक :-

प्रोफेसर डॉ. सुदर्शनलाल जैन

(पूर्व मंत्री, अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद)

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग

काशी हिंदू विश्वविद्यालय

प्रकाशन

श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन

विराग विद्या पीठ भिण्ड (म.प्र.)

❊ प्रसंग : प.पू. गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज ससंघ (36 पिच्छि) का गुजरात प्रांत की राजधानी गाँधीनगर चातुर्मास के पावन अवसर पर

❊ रचना : सम्यग्दर्शन

❊ रचनाकार : प.पू. गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज

❊ संपादक : प्रोफेसर (डॉ.) सुदर्शनलाल जैन
पूर्वमंत्री, अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद

❊ भाषा : हिन्दी (पादटिप्पणीया-प्राकृत एवं संस्कृत)

❊ ग्रंथ-प्रमाण : प्राकृत-संस्कृत में लिखित जैनागम

❊ संस्करण : प्रथम, 2001 गया (बिहार) 1000 प्रतियाँ
द्वितीय, 2001 गया (बिहार) 1000 प्रतियाँ
तृतीय, 2001 भिण्डर, (राज.) 1000 प्रतियाँ
चतुर्थ, 2007 नागपुर (महा.)1000 प्रतियाँ
पंचम, 2009 गांधीनगर (गुज.)2000 प्रतियाँ

❊ पुण्यार्जक : श्री महावीर चंद्र पाटनी,
सरावगी महोल्ला, मु. पो. जेठाना, जिला-अजमेर (राज.)
फोन : 0145 2785525 9828992545
शैलेन्द्र जैन, 305, रायल एन्क्लेव, वापी, गुजरात
फोन : 09825198946

❊ प्राप्तिस्थान : श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन विराग विद्यापीठ
बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

❊ मुद्रक : श्री पारस ट्रेडर्स, नीतिनभाई बी. शाह
निर्माण हाउस, उस्मानपुरा, अमहादाबाद-13.
फोन : 079 27550656 30024414 98795 24858 4414

❊ मूल्य : (35-00) पच्चीस रुपया

21वीं सदी के ज्योति पुञ्ज: गणचार्य विराग सागर जी

डॉ. के.एल. जैन, प्राचार्य
शासकीय कन्या महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म.प्र.)

अपरिमित प्रज्ञा के धनी- *'संत' वह है जिसकी सरलता का कोई अंत न हो। जो संसार से विरक्त होकर स्व-पर कल्याण की भावना में निरत हो, जिसके अन्त: करण में वात्सल्य और स्नेह का निर्झर सतत् प्रवाहमान हो। जिसकी वाणी से जन-जन के कल्याण की कामना के भाव निसृत हो, जिन्होंने ज्ञान की अतुल गहराईयों में उतरकर सृजन के मौलिक स्वरुप को गढ़ा हो। ऐसे अनेक विशेषणों से विभूषित प्रज्ञा के धनी आचार्य विराग सागर जी का इस धरित्री पर अवतरण इस सदी की एक अन्यतम घटना ही मानी जायेगी।*

असाधारण व्यक्तित्व के धारक-*एक ऐसा व्यक्तित्व जिसमें जादूई तिलस्म का आकर्षण हो, यह आकर्षण है उनके त्याग का, साधना का, तप का, चर्या का और उस असाधारण ज्ञान का जिसके कारण श्रावक दीवानगी की हदों को भी पार कर जाता है। आपकी सौम्य मुद्रा के दर्शन मात्र से ही दर्शनार्थियों के कालुष्य का विरेचन हो जाता है। आपके सान्निध्य का सुफल और आशीष का हस्तकमल जीवन को निर्जर और निरामद बना देता है। यही वजह है कि आचार्य विराग सागरजी जहाँ से निकल पड़ते हैं वहाँ के लोग उनके हमेशा-हमेशा के लिए बन जाते है।*

अनोखे बचपन का विरल सम्मोहन-*दमोह (म.प्र.) जिले के पथरिया ग्राम में पाषाणों के बीच इस हीरे का अवतरण 2 मई 1963 (वैशाख शुक्ल 9 वि.सं. 2020) को रात्रि 9 बजे हुआ। पुण्यात्मा ब्र. श्रीमान कपूरचंद जी एवं जननी श्रीमती श्यामादेवी (आपसे ही दीक्षित एवं समाधिस्थ पूज्य आर्यिका विशान्तश्री माताजी) की कोख से एक ऐसा कमल (अरविन्द) खिला जिसमें अपनी अनुपम सुगन्धी से सारे बुन्देलखण्ड को महका दिया। कभी-कभी आगत की आश्चर्य चकित करने वाली घटनाएँ वर्तमान में ही अपना संकेत देने लगती है। कुछ ऐसा ही हुआ बालक अरविन्द के साथ, जब वे बचपन में नग्न अवस्था में खड़े होकर हाथ में झाडू लेकर (पिच्छी का प्रतीक) माँ से बोले-मुनिराज का पड़गाहन करो। क्योंकि कुछ दिन पूर्व उन्होंने इस तरह के दृश्य को देखा था। उक्त दृश्य का आत्म पटल पर अंकन आज आचार्य विराग सागरजी के रुप में परिलक्षित हो रहा है। यह इस धरित्री का पुण्य उदय ही माना जाएगा।*

बालक अरविन्द की बाल्य अवस्था की क्रियाएँ सम्मोहन की सीमाएँ लाँघने में समर्थ थीं, सेवा कार्य के हद दर्जे की दीवानगी उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। इसी भावना के कारण बालक अरविन्द सभी को सम्मोहित कर लेते थे। संवेदनशीलता की भावना ने उन्हें प्राणी मात्र की कल्याण कामना से आपूरित कर दिया था। यही कारण है कि आचार्य श्री विराग सागरजी अहर्निश साधना की असीम ऊँचाईयों की ओर अत्यन्त तीव्रता के साथ अग्रसर हो रहे हैं।

अर्जन और सर्जना के विविध सोपान-*बालक अरविन्द की प्रारंभिक शिक्षा पथरिया और इसके उपरांत श्री शांति निकेतन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय कटनी में हुई। निष्णात गुरु पं. जगन्मोहनलालजी के सान्निध्य ने प्रज्ञा की अन्तर्ज्योति को जागृत कर दिया। ज्ञानाराधना की ललक और वैराग्य भावना की व्यग्रता ने मनोयोग पूर्वक अर्जन की प्रवृत्ति को परवान चढ़ने का काम किया, परिणाम स्वरुप 16-17 वर्ष की अवस्था में दि. 20 फरवरी 1980 फाल्गुन शुक्ल 5 वि.सं.*

2036 बुढ़ार जिला शहडोल (म.प्र.) में परम पूज्य तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागरजी से आपने क्षुल्लक दीक्षा ली तब आपका नाम पू. 1 05 क्षुल्लक पूर्णसागर जी रखा गया, 20-21 वर्ष की अल्पायु में दि.9 दिसम्बर 1983 मागशिर शुक्ल 5 वि.सं. 2040 को औरंगाबाद जिला (महाराष्ट्र) में वात्सल्य रत्नाकर परम पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज से मुनि दीक्षा ग्रहण की, तब आपका नाम मुनिश्री विराग सागरजी रखा गया । दीक्षा ने शिक्षा के विकास क्रम को गंगा की धारा के समान प्रवाहमान रखने में एक ऊर्जयन्त-ऊर्जा से संचरित रखा, जिससे अल्प समय में आप न्याय, व्याकरण, दर्शन, साहित्य व अध्यात्म के महान चितेरे बन गए ।

महाव्रती की महती प्रभावना-*आज का वातावरण विसंगतियों और विद्रूपताओं की कालिमा से कलंकित है । ऐसे वातावरण में मनुष्य का नैतिक विकास हो पाना काफी दुष्कर जान पड़ता है । सर्वत्र हिंसा, अनैतिकता, बेईमानी और झूठ का बोलबाला है, स्वार्थ की संकीर्णताओं ने व्यक्ति को संवेदन शून्य और हृदयहीन बना दिया है, प्रेम और भाईचारे के सद्व्यवहार की अपेक्षाएँ दिनोंदिन क्षीण होती जा रही है-ऐसे वातावरण में महाव्रती का संदेश जीवन में ऐसी ऊर्जा का संचार करता है जिससे की जीवन की धारा ही बदल जाती है । आचार्य विराग सागरजी ने भ्रमित युवा पीढ़ी को आचरण और नैतिक मूल्यों की दृष्टि से जो दिशा-दृष्टि प्रदान की है वह इस सदी की श्रेष्ठतम घटनाओं में इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरित की जायेगी ।*

कुशल संघ संचालक - *मोक्ष के आकांक्षी, वीतरागी पथ के पथिक, पदों से अलिप्त मुनि श्री विराग सागरजी महाराज की उत्तरोत्तर साधना, अनुशासन एवं आगमिक प्रणाली से प्रभावित होकर अनेक आत्म हितैषी उनके साथ आत्म-साधना करने के लिए तत्पर हो गये, साथ ही लगभग 10 आचार्य परमेष्ठी उनके मनोज्ञ व्यक्तित्व को देखकर उन्हें अपना आचार्य पद देकर संघ का भार सौंपना चाहते थे तथा कितने ही बार तो अनेक आचार्यों ने उनके आचार्य पद की घोषणाएँ की लेकिन मुनि विराग सागर जी ने 'मैं अभी इस योग्य नहीं हूँ', या 'मेरे गुरु अभी विराजमान है,' ऐसा कहकर उसे स्वीकार न किया, फिर भी समय बड़ा बलवान होता है और ऐसा योग आया कि परम पूज्य आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज की आज्ञा एवं आशीर्वाद तथा आचार्यश्री विद्यासागार जी महाराज एवं आचार्य श्री सुमति सागर जी आदि अनेक आचार्यों के आशीर्वाद से आचार्यत्व के गुणों से परिपूर्ण होने के कारण चतुर्विध संघ, द्रोणगिरि की समाज, पं.दरबारीलाल जी कोठिया (बीना) आदि अनेक विद्वानों एवं श्रेष्ठियों ने द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर दि.8-11-1992 (कार्तिक शुक्ल 13, वि.सं. 2049) को उन्हें आचार्य पद से विभूषित कर अपने भाग्य को सजाया था । इस प्रकार साधना-पथ पर उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर विराग सागरजी ने अपने ज्ञान, ऊर्जा और साधना के द्वारा आत्म कल्याण और लोक कल्याण के जिन शीर्ष प्रतिमाओं को स्थापित किया यह असाधारण ही माना जायेगा ।*

वर्षायोग के अविस्मरणीय क्षण-*संयम काल के दौरान आपने संपूर्ण भारत वर्ष में भ्रमण कर प्रभावना करते हुए धर्म की ध्वजा को फहराया तथा इस दौरान जहाँ-जहाँ भी आपका चातुर्मासिक प्रवास रहा, वहाँ आपके सम्मोहक व्यक्तित्व से जैन जैनेत्तरों पर ऐसी गहरी छाप पड़ी कि नास्तिक भी आस्तिक हो गये । प.पू. गुरुवर के वृहद् प्रभावना के दुर्ग (म.प्र. 1980), नागपुर (महाराष्ट्र 1981) कारंजा (लाड) (महा. 1982 व 83) भावनगर (गुज. 1984) पांचवा (राज. 1985), निमाज (राज. 1986), जयपुर (राज. 1987) भिण्ड (म.प्र. 1988 व 89), टीकमगढ़ (म.प्र. 1990) श्रेयांसगिरि (म.प्र. 1991), द्रोणगिरि (म.प्र. 1992) श्रेयांसगिरि (म.प्र. 1993)*

बीना (म.प्र. 1994), ललितपुर (उ.प्र. 1995) जबलपुर (म.प्र.1996) भिण्ड (म.प्र. 1997, 88 व 99), सम्मेदशिखर जी (झारखण्ड 2000) गया (बिहार 2001), श्रेयांसगिरि (म.प्र. 2002) भिलाई (छ.गढ़ 2003) कारंजा (लाड) (महा. 2004), मूडबिद्री (कर्नाटक 2005), मेलचित्तामूर (तमिलनाडू 2006), उदगाँव (महा. 2007), बोरीवली (मुम्बई-महा-2008) गांधीनगर (गुजरात-2009) में चातुर्मास सम्पन्न हुए।

संयमी सृजक :- पूज्य गुरुओं के प्रति विनय भाव तथा शिष्यों के प्रति वात्सल्य एवं करुणा भाव तथा समाज के सही मार्गदर्शक एवं देव-शास्त्र-गुरु के प्रति परमागाढ़ श्रद्धा को देख अनेक भक्तों ने आपको अपना गुरु चयन कर आपका शिष्यत्व धारण कर अपने जीवन को मोक्षमार्ग के प्रति समर्पित किया व आपके साथ चलने को तैयार हो गए, आपने संयम काल के 29 वर्षों में भारत के 10 प्रान्तों की लगभग 40,000 कि.मी. पैदल यात्रा कर अनेकों सिद्धक्षेत्रों, अतिशय क्षेत्रों एवं नगरों में आध्यात्मिक साधना कर अनेकों भव्यों के दीक्षाएँ दी हैं जिसमें अतिशय क्षेत्र बरासों (भिण्ड) की 13 मुनि दीक्षाएँ, ललितपुर की 21 दीक्षाएँ तथा श्रवणबेलगोला की 25 दीक्षाओं ने जन मानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है और जिससे जैन-जैनेत्तरों में महती प्रभावना हुई। यही कारण है कि आप एक विशाल एवं श्रेष्ठ वटवृक्ष की तरह है जिसकी छत्रछाया में 7 आचार्य, 47 मुनि, 41 आर्यिका, 3 ऐलक, 14 क्षुल्लक, 6 क्षुल्लिकाएँ एवं अभी आपके निर्देशन में लगभग 150 से भी अधिक ऐसे भी विनेय साधक है जो अंतेवासिन के रूप में अपनी साधना में संलग्न है तथा आपके कुशल निर्यापकत्व में अनेक साधुओं एवं साध्वियों ने समाधि कर अपने जीवन को सार्थक किया है।

अनुपम अनुशासन एवं चारित्र साधक- चारित्र संवर्धक, अनुशासन के पथानुगामी गुरुदेव आप मात्र शिष्यों को दीक्षा ही नहीं देते किन्तु उन्हें शिक्षा दे अनुशासन में भी रहना सिखाते है। जो शिष्य अनुशासनवान होते है उन्हें सतत् संस्कारित कर ऊँचा उठाते हैं। अपने शिष्यों में आध्यात्मिक संत युवा आचार्य श्री विशुद्ध सागर जी, आचार्य विशद सागर जी, आचार्य श्री विभव सागर, आचार्य श्री विमर्श सागर, आचार्य श्री विहर्ष सागर जी, आचार्यश्री विनिश्चय सागरजी तथा प्रवचन पटु आचार्य श्री विमद सागर जी आदि को तो आपने 2005 कुंथुगिरि से ही आचार्य पद की घोषणाएँ कर दी थी, किन्तु धन्य है ऐसे शिष्यों को, कि उन्होंने पद की होड़ नहीं की। अपितु उक्त महाराजों में से अभी 3 मुनिराजों को मुनि श्री विशुद्ध सागर, मुनि श्री विभव सागर, मुनि श्री विमदसागर जी को पू. गुरुदेव ने ही अपने हाथों से उन्हें आचार्य पद के योग्य शिक्षा एवं प्रायश्चित ग्रंथ पढ़ाने के पश्चात् औरंगाबाद में 31 मार्च 2007 को आचार्य पद से विभूषित कर अपने हृदय की उदारता का साकार दर्शन दिया।

अनुशासक वही हो सकता है जो प्रथम स्वयं ही अनुशासन के सांचे में ढ़ला हो, वे अनुशासन में मात्र ढ़ले ही नहीं, किन्तु समग्र शिष्यों को भी अनुशासन में ढ़ाला है यद्यपि अनुशासन विहीन ईर्ष्यालु कुछ शिष्यों ने अपना ग्रुप बना दैविक झूठे चमत्कारों की ख्याति अर्जन हेतु अनुचित प्रयत्न किये किन्तु आचार्यश्री ने उन्हें प्रथम समझाया जब वे नहीं माने तो उन्हें संघ से बहिष्कृत कर दिया जिससे उन लोगों ने समय-समय पर आप पर छींटा कशी भी की, किन्तु आप जरा भी विचलित नहीं हुए। सूर्य की भाँति प्रकाशमान ही होते रहे हैं तथा अपने अनुशासन में किंचित् भी ढ़ील नहीं दी और न किसी परिस्थिति के सन्मुख घुटने टेके हैं। यहीं कारण हैं उनमें से कतिपय लोगों ने क्षमायाचना कर प्रायश्चित लिया। यही देख कर्म योगी स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्ति जी

श्रवणबेलगोला के मुख से शब्द प्रस्फुरित हुए कि "आचार्य विराग सागरजी एवं उनका संघ चलती-फिरती युनिवर्सिटी है ।"

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी-*वैराग्य को दृढ़ करने एवं संयम साधना को निर्दोष बनाने तथा आगमानुकूल चर्या बनाने के लिए, समय का सदुपयोग, धर्म ध्यान की वृद्धि एवं केवलज्ञान की उत्पत्ति में कारणभूत अहर्निश आचार्य प्रणीत शास्त्रों के स्वाध्याय में आप निमग्न रहते हैं तथा अपने साधु समूह को भी निरंतर स्वाध्याय के महत्व को बताकर उन्हें अध्ययन के लिए प्रोत्साहित एवं प्रेरित करते रहते हैं, यही कारण है कि आपने षट्खण्डागम श्री धवला जी की 5 वर्षों में 16 वाचनायें बुंदेलखण्ड में मूर्धन्य विद्वानों की उपस्थिति में निर्विघ्न पूर्ण की, साथ ही कषायपाहुड की जय धवल ग्रन्थ की वाचन अहमदाबाद, उस्मानपुरा में सानंद सम्पन्न हुआ । साथ में अनेक स्थानों में सम्यग्ज्ञान शिक्षण शिविर व विद्वत गोष्ठि का सफल आयोजन किया तथा आपने अपने शिष्यों को महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, अष्टसहस्त्री, त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति, गोम्मटसार, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, मूलाचार, आचारसार जैसे महान ग्रंथों का अध्ययन कराया, जिससे स्पष्ट है कि आप चारों अनुयोगों के प्रकाण्ड विद्वान हैं ।*

श्रुतसेवा-*ज्ञान के प्रति अभिरूचि होने से आप निरंतर श्रुत सेवा में तल्लीन रहते हैं और आगम के चिंतन एवं मनन के द्वारा तत्व की गहराई में उतरकर उसके गूढ़ रहस्यों का उद्‌घाटन कर आगम की पुष्टि करते हुए लोगों की भ्रांति को दूरकर उनके सम्यग्दर्शन को निर्मल करते हैं । इस प्रकार आपने आगम के आधार से अपने साधना काल में अनेक कृतियों का सृजन कर माँ जिनवाणी के भण्डार को समृद्ध कर एवं पर के मिथ्यांधकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश किया है, जिसमें मुख्य कृतियाँ सम्यग्दर्शन, व्यसन विचार, जिनेन्द्र दर्शन जिनेन्द्र पूजन, शुद्धोपयोग, तीर्थंकर दिव्य दर्शन, सल्लेखना से समाधि, आगम चक्खू साहू, परम दिगम्बर जैन मुनि, सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म आदि हैं । जिसमें शुद्धोपयोग कृति, जिस पर लगभग 150 विद्वानों ने समीक्षा कर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है क्योंकि यह कृति अनेक मिथ्या विकल्पों का निसर्ग करती है । साहित्य सृजन की इस श्रृंखला में प.पू. कुंदकुंदाचार्य स्वामी द्वारा रचित वारसाणु वेक्खा नामक ग्रंथ पर आपके द्वारा लिखी गई संस्कृत "सर्वोदयी टीका", जिन आगम के लिए एक ऐतिहासिक उपलब्धि है क्योंकि प.पू. आचार्य कुंदकुंदस्वामी के इस ग्रंथ पर संस्कृत टीका अभी तक अनुपलब्ध थी, श्रुत सेवा में आपका यह महान अवदान युगांत तक सदैव स्मरण किया जायेगा । इस तरह सर्जना के क्षेत्र में लगभग 50 पुस्तकों के द्वारा सरस्वती के भण्डार को भरने का आपने जो भागीरथ कार्य किया है वह अनुपम है इनमें भारतीय साहित्य, धर्म, दर्शन, ज्ञान और चारित्र के ऐसे बहुविध रूप देखने को मिलते हैं जिन्हें देखकर आचार्यश्री की बहुमुखी प्रतिभा का सहज ही आकलन किया जा सकता है ।*

आपकी सत् प्रेरणा से श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ, भिण्ड, अनेकों धार्मिक एवं लौकिक (शिशु, प्राईमरी, मिडिल एवं हाईस्कूलीय) शिक्षायें प्रदान कर रही हैं । इसी प्रकार पन्ना में श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन स्कूल, ब्रजपुर में श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन विद्यालय भी अपनी मिडिल तक की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं । बीना में आचार्य विराग सागरजी बी.एड. कॉलेज ने अल्प समय में बहुत बड़ी सफलता हासिल की है ।

धर्म प्रचार-*प्रसार के क्षेत्र में विराग वाणी मासिक पत्रिका निरन्तर हर स्तर के आलेखों से भरपूर रहती हुई जन मानस को आकर्षित करती है ।*

बहु आयामी विशेषताओं से समन्वित

पूज्य आचार्य श्री के दर्शन इस रुप में भी करें-

1. *जो टी.वी, मोबाइल, लेफ्टॉप, पंखा, कूलर एवं ए.सी. का प्रयोग नहीं करते हैं।*
2. *जो बाथरूम में लघुशंका एवं शौचालय में दीर्घ शंका (शौच) नहीं जाते हैं।*
3. *जो करीब* 1985 *वर्षों से नाखून अपने हाथ से ही निकालते हैं (ब्लेड, नैलकटर या कैंची से नहीं निकालते हैं)*
4. *जिन्हें कभी थूकते हुए नहीं देखा गया हैं।*
5. *जो आहार में द्विदल नहीं लेते है।*
6. *दही, तेल का जिनका आजीवन त्याग है।*
7. *सभी प्रकार की हरी पत्तियाँ एवं (मटर के अलावा) सभी हरी फलियों का जिनका आजीवन त्याग है।*
8. *जो प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशी को नीरस करते हैं।*
9. *जो किसी भी महिला से एकान्त में अकेले चर्चा नहीं करते हैं।*
10. *जिनका कोई प्रोजेक्ट नहीं है तथा चंदा-चिट्ठा से दूर रहते हैं।*
11. *जिनके संघ में मोटर, कार, जीप तथा अनावश्यक परिग्रह नहीं है।*
12. *जिनके संघ में कोई संघ संचालिका नहीं है।*
13. *जो तंत्र-मंत्र नहीं करते तथा किसी की कुण्डली एवं हाथ आदि नहीं देखते हैं।*
14. *जो औषध (दवाईयों) को न रखते हैं, न बताते हैं।*
15. *जिनमें पंथ-परंपरा का कोई दुराग्रह नहीं है।*
16. *जो गरीब और अमीर को समान रुप से देखते हैं।*
17. *जो सदैव ज्ञान-ध्यान और तप में लीन रहते हैं।*
18. *जो किसी की बुराई या निंदा न सुनते हैं और न करते हैं।*
19. *बड़े-बड़े कष्टों में जिनकी सहिष्णुता देखी गई है।*
20. *बड़े-बड़े उपसर्गों में भी जिनकी बड़ी धैर्य व समता के दर्शन हुए।*
21. *जिन्होंने अभी तक विभिन्न मंत्रों की लगभग तीस लाख से भी अधिक जाप की है।*
22. *जो विहार आदि के समय में भी प्रायः जाप करते रहते हैं।*
23. *जो श्वासोच्छ्वास से कायोत्सर्ग करते हैं।*
24. *जो मुनिचर्या के* 28 *कृतिकर्म प्रतिदिन करते हैं।*
25. *जो अपने संघस्थ साधुओं को आगम, अध्यात्म, सिद्धांत, व्याकरण, न्याय आदि की शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा भी देते हैं।*
26. *जो संघस्थ आबाल-वृद्धों का पूरा ध्यान रखते हैं।*
27. *जिन्होंने अभी तक कर्मदहन, णमोकार पैंतीसी, सर्वदोष परिहार, प्रत्याख्यान, पंचविंशतिका, वचनगुप्ति, नीति सागर, षडरसी, भक्तामर, समवशरण व्रत कर लिये हैं तथा चारित्र शुद्धि व्रत कर रहे हैं।*
28. *जो प्रत्येक अष्टमी-चतुर्दशी को प्रायः* 22 *घंटे का मौन रखते हैं। तथा प्रतिदिन आवश्यकों के अलावा भी एक घंटे का मौन रखते हैं।*
29. *विशाल संघ के संचालन की जिनकी अपूर्व ही क्षमता हैं।*
30. *जिनका* 10 *अन्न एवं* 15 *हरी का आजीवन नियम हैं।*

प्रतिभा सम्पन्न गणाचार्य - 16-17 *अगस्त* 2003 *जब उपसर्ग के बादल आप पर मंडराये, तब आपकी एक आसन से* 36 *घंटे की लगातार निराहार योग ध्यान साधना, अथाह समता, मेरुवत् संकल्प शक्ति से प्रभावित होकर छत्तीसगढ़ (दुर्ग, वैशाली आदि अेनक स्थानों) की समाज ने आपको* **'उपसर्ग विजेता'** *की उपाधि से अलंकृत कर अपने जीवन को कृतार्थ किया।* 2004 *के चार्तुमास काल में आपकी निमर्ल साधना से प्रभावित होकर कारंजा समाज ने आपको* **'चारित्र शिरोमणि'** *की उपाधि से सम्मानित कर अपने आपको गौरवान्वित किया था।*

आपने अपनी कुशलता के द्वारा अल्पायु में 118 *पथिकों को मोक्ष की राह दिखाकर उनका मोक्षमार्ग प्रशस्त किया हैं इसलिए परम पूज्य गणाधिपति गणधराचार्य श्री कुंथुसागरजी महाराज ने* 2005 *में* 15 *आचार्यों एवं* 200 *साधुओं की उपस्थिति में जनसमूह के समक्ष आपको* **'श्रमण रत्नाकर'** *की उपाधि से सुशोभित किया था। आपने जो धवला ग्रंथ की* 16 *पुस्तकों की वाचना लगभग* 150 *विद्वानों की उपस्थिति में* 5 *वर्षों में पूर्ण की हैं इससे प्रभावित होकर* 2005 *में मूडबिद्री के भट्टारक श्री चारुकीर्ति जी एवं वहाँ की समाज ने आपको* **'सिद्धांतरत्न'** *की उपाधि प्रदान कर अपना अहोभाग्य समझा था। आपने अपने संयमी जीवन में अनेक आध्यात्मिक ग्रंथों का रसास्वादन किया हैं, कराया हैं इसलिए आप उपसर्गो से गुजरकर भी काँटो में गुलाब की तरह विकसित हुए अत: आपकी अध्यात्म साधना से प्रभावित होकर धर्माधिकारी डॉ. वीरेन्द्रकुमार हेगड़े जी ने* 2005 *धर्मस्थल में* **'अध्यात्म योगी'** *की उपाधि से विभूषित कर अपना गौरव बढ़ाया है।* 2006 *मेलचित्तामूर में स्वस्ति श्री लक्ष्मीसेन भट्टारकजी ने* **'समता मूर्ति'** *की उपाधि से,* 2007 *औरंगाबाद में त्रय आचार्य पद प्रतिष्ठा के अवसर पर परम पूज्य आचार्य श्री विशुद्ध सागरजी महाराज, परम पूज्य आचार्य श्री विभव सागर जी महाराज, परम पूज्य आचार्यश्री विमद सागरजी एवं वहाँ की समाज ने लगभग* 25 *संघों के नायक होने से आपको* **'गणाचार्य'** *तथा* 2007 *शिरडशाहपुर में हुए श्री मल्लिनाथ श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक महोत्सव के पावन सुअवसर पर परम पूज्य आचार्य विभव सागरजी एवं सकल दिगम्बर जैन समाज ने* **'वात्सल्य रत्नाकर'** *की उपाधि से विभूषित कर अपने जीवन में गुरु महिमा का प्रकटीकरण कर अपने जीवन को सौभाग्यशाली बनाया। आपने अपने विगत* 29 *वर्षों के साधनाकाल में राष्ट्र के लगभग संपूर्ण प्रांतों में भ्रमण कर अहिंसा व शाकाहार का संदेश जन जन तक पहुँचाया है अत: सन्* 2007 *में आपके मुनि दीक्षा के* 25 *वें वर्ष में प्रवेश करने पर कुंजवन उदगाँव में* **"राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव"** *के अवसर पर कुंजवन ट्रस्ट समिति उदगाँव, राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव समिति, राष्ट्रीय विराग युवा व महिला मंच, भिंड तथा सांगली एवं विधायक कपूरचंद जी घुवारा ने आपको* **'राष्ट्रसंत'** *की उपाधि प्रदान की। इसी अवसर पर प.पू. निमित्तज्ञानी आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज की कीर्ति को देश-प्रदेशों में प्रचार करने से प.पू.तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागर जी महाराज ने आपको* **'विमल कीर्ति'** *की उपाधि दे असीम वात्सल्य का अद्वितीय उपहार दिया। आपकी निर्मल छवि को देख सकल दिगम्बर जैन समाज व विमर्श सेवा समिति शिवपुरी ने* **'आचार्य गौरव'** *तथा सिद्धांत शास्त्रों के अभीक्ष्ण ज्ञान से ओत-प्रोत होने से पं. धनपाल हबले सहित उपस्थित विद्वानों ने आपको* **'सिद्धांत चक्रवर्ती'** *की उपाधि से विभूषित किया। वर्तमान में न्याय एवं दर्शन की क्षीण होती विद्या का आपने स्वयं अध्ययन किया एवं विशाल शिष्य समूह को कराया इसलिए* **'राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा वर्ष समापन समारोह'** *को भव्य आयोजना के अवसर पर श्री* 1008 *पार्श्वनाथ स्वामी*

देहरासर ट्रस्ट गुलालवाड़ी, मुंबई सहित भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी जी कोल्हापुर, भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी जी मेलचित्तामूर, प्रतिष्ठाचार्य प्रदीप जैन, 'मधुर,' प्रतिष्ठाचार्य कमलकुमार शास्त्री कलकत्ता तथा पं. भरत काला आदि ने प.पू. गुरुदेव को **'न्याय भास्कर'** *की उपाधि प्रदान की। तथा इसी अवसर पर मुनि श्री विवर्जन सागर जी महाराज की भावना के अनुरुप सकल दिगम्बर जैन समाज आदम्पाकम (चेन्नई) तथा पं. सिहचंद्र जी शास्त्री ने आपको* **'श्रमण सूरि'** *की उपाधि से विभूषित किया। इसी श्रृंखला में भगवान नेमीनाथ एवं* 72 *करोंड* 700 *मुनिराजों की निर्वाण भूमि श्री गिरनारजी सिद्धक्षेत्र पर आयोजित सप्तमुनि दीक्षा के पावन अवसर पर गिरनार गौरव प.पू. आचार्य श्री निर्मल सागर जी महाराज ने* **"आचार्य रत्न"** *की उपाधि देकर असीम वात्सल्य का परिचय दिया।*

इसी प्रकार आपके लिए समय-समय पर विभिन्न स्थानों पर विद्वानों ने उपाधियाँ दी, यथा सन् 1988 *बरासों में समाज ने* **'क्रांतिकारी संत,'** 1994 *बीना की समाज ने* **'बुंदेलखण्ड के प्रथमाचार्य,'** 1995 *जबलपुर में साहित्य मनीषी श्री सुरेश 'सरल' जी ने* **'निस्पृही संत,'**1999 *भिण्ड में पण्डित सुमतिचंद्र जी शास्त्री ने* **'अध्यात्म सिद्धांत वारिधि,'**2001 *गया में श्री पण्डित लक्ष्मण प्रसाद जी ने* **'न्याय मार्तण्ड,'**2002 *श्रेयांसगिरि में* **'तीर्थ उद्धारक एवं संत शिरोमणी,'** 2004 *राजिम में पण्डित श्री ऋषभकुमार जी ने* **'समाधि सम्राट,'**2005*शमनेवाड़ी में परम पूज्य आचार्य गुणधरनंदी जी ने* **'ज्ञान दिवाकर'** *की उपाधि से विभूषित कर अपने आपको गौरवान्वित किया।*

कृतित्व एवं व्यक्तित्व की गौरव गाथा-*आपके ऊर्जा पूर्ण महामानवीय जीवन पर श्री साहित्य मनीषी श्री सुरेश 'सरल' जी ने* **'निस्पृही संत'** *कृति तथा प्राकृत मनीषी प्रो. उदयचंदजी उदयपुर ने साहित्य विद्या से परिपूर्ण प्राकृत भाषा में* **'विराग सेतु'** *महाकाव्य कृति लिख जन मानस को आचार्य श्री के असीम व्यक्तित्व से परिचय कराया है एवं डॉ.लोकेश खरे ने आपके असीम कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर पी.एच.डी. कर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है।*

अहिंसा और मानव धर्म के संदेश वाहक-*आज सर्वत्र हिंसा का साम्राज्य है। यह हिंसा किसी जीव की नहीं वरन् उन मूल्यों की है जो हमारी संस्कृति के प्रबल आधार है। सांस्कृतिक मूल्यों का आज जिस तरह ह्रास हो रहा है वह अत्यन्त दुःखदायी है। मानवीय सम्बन्धों में जिस तीव्रता के साथ बेचारगी का बोलबाला बढ़ रहा है उससे आत्मीयता धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। संवेदनशून्य मानव आज जिस मुकाम पर खड़ा है वह एकदम हताश, निराश और विवश है, ऐसे नैराश्य के वातावरण में आचार्य श्री की वाणी के द्वारा जिन अमृत वचनों की वर्षा जगह-जगह पर हो रही है वह संतप्त मानवों के लिए संजीवनी की तरह जीवनदायिनी का काम कर रही है। जीवन का अर्थ क्या है ? इसे अर्थवान बनाने के लिए किन-किन चीजों की आवश्यता होती है ? इतिहास के द्वारा स्मरण पाना कैसे संभव है ? आदि; जीवन के उन शाश्वत सूत्रों का संदेश हमें आचार्य श्री के साहित्य में देखने को मिलता है। व्यक्ति को आज इस बात का बोध होना चाहिए कि सबसे बड़ा धर्म मानव धर्म है। इसकी रक्षा के लिए व्यक्ति को सतत् सचेत रहना चाहिए । आचार्य श्री ने मानव धर्म और महावीर के प्रमुख सिद्धांत अहिंसा का जन-जन तक पहुँचाने का जो स्तुत्य कार्य किया है उसे इतिहास कभी विस्मृत नहीं कर पायेगा।*

आद्यमिताक्षर

अंकगणित में जिस प्रकार अंक (1 से 9 की संख्या) के बिना चाहे कितने भी शून्य क्यों ना रखे जाएँ तो भी उनकी कोई कीमत नहीं होती; किन्तु अंक के साथ वे ही शून्य कीमती हो जाते है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन एक अंक है, इसके बिना रखे गये शून्यों को परस्पर जोड़ने, घटाने, भाग देने एवं गुणा करने पर भी शून्य ही रहता है। अर्थात् सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान, व्रत, चारित्र, तप आदि की कोई कीमत नहीं है वे सभी मोक्षमार्ग में शून्य ही हैं। सम्यग्दर्शन रूप अंक से युक्त वे ही शून्य गणनीय हो जाते हैं तथा कई गुने कीमती हो जाते हैं।

सम्यग्दर्शन के बिना जीवनपर्यंत निरंतर चलते हुए भी हम अपने को वही के वहीं खड़ा पाते है जहाँ से चलना प्रारंभ किया था। जैसे - तट (किनारे) से बंधी नाव को कितना भी चलाया जाए; किन्तु वह स्वकीय स्थान से एक कदम भी गतिमान नहीं हो पाती है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना मिथ्यात्वरूपी तट से बंधी आत्मारूपी नाव को व्रत, नियम, संयम तथा उग्रोग्र तपश्चरण के द्वारा निरंतर चलाये जाने पर भी अपने स्थान से एक भी कदम आगे नहीं बढ़ पाती है। सम्यग्दर्शन धर्म का प्राण है। जैसे जीवन के लिए प्राण आवश्यक है उसी प्रकार मोक्ष या मोक्षमार्ग के लिए सम्यग्दर्शन आवश्यक है।

प्रस्तुत विषय (सम्यग्दर्शन) जितना सुगम है उतना ही जटिल भी है। सुगम इसलिए है कि एक सम्यक् आस्थावान, अनपढ़, पतित, पापी तथा निर्धन मनुष्य भी इसे धारण कर उत्तरोत्तर विकास कर मोक्ष प्राप्त कर सकता हैं। पशु-पक्षी, देव व नारकी भी इसे धारण कर क्रमश: मनुष्य-जन्म लेकर तथा रत्नत्रय-धारण कर निर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं। जटिलता का कारण इसलिए है कि इसकी पूर्ण महिमा को तो चार ज्ञान के धारी गणधर भी नही गा सकते हैं। वर्तमान में जटिलता का मुख्य कारण आगम और अध्यात्म की विवक्षा को न समझ पाना है, क्योंकि हमारे पूज्य आचार्यों ने हमारे लिए इस विषय को समझाने के लिए आगम व अध्यात्म इन दो भाषाओं (कथन-प्रणाली) के माध्यम से समझाया हैं। ये दोनों भाषाएँ अपने आप में स्वतंत्र हैं, दोनों की विवक्षाएँ एवं स्वामी भी स्वतंत्र हैं। आदि से अंत तक यही विषय इस पुस्तक में संक्षेप में समझाया गया है। जहाँ आगम इस विषय को भेदपरक स्वपर द्रव्य-सापेक्ष कथन करता है तो अध्यात्म प्रारम्भ में पर द्रव्य -सापेक्ष व अंत में अभेदात्मक स्वद्रव्य सापेक्ष कथन करता है। परंतु दोनों के विषय व पात्र भिन्न-भिन्न हैं। अत: कथन शैलियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। तथा उनके नाम भी भिन्न-भिन्न हैं। जैसे की आगम ग्रन्थों में अंतरङ्ग-बहिरङ्ग हेतुओं को तथा सराग व वीतराग के भेदों को विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न तरीकों से समझाया हैं।

यद्यपि अन्तरङ्ग हेतुओं को प्राय: सभी आचार्यों ने दर्शनमोह के उपशम, क्षय, क्षयोपशम को एक रूप से स्वीकार किया हैं; किन्तु किन्हीं-किन्हीं आचार्यों ने दर्शनमोह के उपशम से होने वाले औपशमिक सम्यग्दर्शन, दर्शनमोह के क्षयोपशम से होने वाले क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन इन दोनों को सराग सम्यग्दर्शन तथा दर्शनमोह के क्षय से होने वाले क्षायिक सम्यग्दर्शन की वीतराग संज्ञा दी है जो चतुर्थ गुणस्थान में भी संभव है तथा किन्ही आचार्यों ने (आध्यात्मिक ग्रंथो में) सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से ही वीतराग सम्यग्दर्शन माना हैं। अन्य किन्ही आचार्यों ने दर्शन व चारित्र मोहनीय कर्म के पूर्णत: क्षय से होने वाले क्षीणमोह नामक बारहवें गुणस्थान में ही वीतराग सम्यग्दर्शन माना है। शास्त्रों में जैनाचार्यों ने इसकी अत्यन्त सूक्ष्म एवं विशद् व्याख्यायें की हैं; किन्तु क्षायोपशमिक ज्ञान की हीनतावश या प्रमादवश अथवा सम्यक् पुरुषार्थ के अभाव में सम्यक् रूप से न समझने के कारण सम्यग्दर्शन की आगमिक व आध्यात्मिक, सराग-वीतराग, निश्चय-व्यवहार, प्रथमोपशम-द्वितीयोपशम, क्षायोपशमिक या क्षायिक आदि लाक्षणिक भेद-प्रभेद, उत्पत्ति के हेतुओं आदि की गहन पगडण्डियों में प्राय: प्राणी भटका ही नहीं; किन्तु इस भटकन में कितने ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के धोखे में सम्यग्दर्शन के निर्मल पथ को छोड़कर मिथ्यादर्शन के पथगामी बन कर भी अपने आप को सम्यग्दृष्टि मान बैठे हैं। इस दिशा में त्यागी, व्रती, मुनि एवं विद्वज्जनों का महत्वपूर्ण प्रयास होना चाहिए; किन्तु वर्तमान में यह प्रयत्न अत्यन्त न्यून हैं।

अत: इस दिशा में सभी सम्यक् प्रसार करें, इन्हीं पवित्र भावनाओं से प्रेरित होकर हमने उक्त विषय को संक्षेप में समझाने का एक लघु प्रयास किया है। यद्यपि द्वादशाङ्ग के अथाह समुद्र को पार करने में मैं असमर्थ हूँ, अत:'त्रुटियाँ सम्भव हो सकती है। श्रुतदेवी व श्रुतपुत्र निश्चित ही मुझे उनसे अवगत कराने का कष्ट करेंगे।

इस कार्य के लेखन में आर्यिका विशिष्टश्री माता जी, विदुषीश्री माताजी एवं विभूतिश्री माताजी ने सराहनीय सहयोग किया है। तथा जिन महानुभावों ने पुस्तक प्रकाशन में सराहनीय आर्थिक योगदान किया है। उन सबको मेरा शुभाशीष।

यद्यपि यह कृति पूर्व में ई.2001 श्रुतपञ्चमी को प्रकाशित हुई थी परन्तु उसमें कई तरह की अशुद्धियाँ रह गई थी जिन्हें प्रोफेसर (डॉ.)सुदर्शनलाल जैन ने श्रमपूर्वक ठीक किया और इसे सम्यक् सम्पादित करके तथा प्रस्तावना लिखकर अभिनव रूप दिया, इसके लिए प्रो.जैन को मेरा विशेष आशीर्वाद है।

दीपावली, ई.2002 वी.नि.सं.2529 — आचार्य विरागसागर

श्रेयांसगिरि (पन्ना) म.प्र.

सम्पादकीय

परम पूज्य आचार्यश्री विराग सागर जी महाराज की प्रस्तुत कृति 'सम्यग्दर्शन' उनके अनुभव का प्रतिबिम्ब हैं जिसका उन्होंने अपने आगम-चक्षुओं से साक्षात्कार किया हैं। 'सम्यग्दर्शन' शब्द सुनने में जितना सहज लगता है उसे सही अर्थों में समझना-समझाना तथा प्राप्त करना उतना ही कठिन है।

इस अतिगम्भीर तथा स्वच्छ दर्पण की तरह निर्मल विषय को जब तक हम अभ्यन्तर दृष्टि से नहीं देखेंगे तब तक उसका साक्षात्कार असम्भव है। हम केवल बाह्य-चिन्हों को देखकर कह देते है कि अमुक सम्यग्दृष्टि है, परंतु कभी-कभी इसमें भ्रम की सम्भावना है, क्योंकि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं के ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ के काल से जीव 'ऋजुजड़' (सरल परन्तु मन्दबुद्धि) थे, द्वितीय तीर्थङ्कर अजितनाथ से लेकर तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के काल के जीव 'ऋजुप्राज्ञ' (सरल तथा व्युत्पन्न) थे परंतु चौबीसवें तीर्थंकर महावीर के काल के जीव 'वक्रजड़' (कुटिल तथा मंदबुद्धि) हैं।[1] तीर्थंकर महावीर काल के जीवों में कुटिलता तथा कुतर्क-बुद्धि अधिक होने के कारण बाह्य-चिन्हों से उन्हें समझना अतिकठिन हो गया हैं। आज यद्यपि भौतिक-विज्ञान का पर्याप्त विकास हुआ हैं, परन्तु हम अध्यात्म से उतने ही पीछे होते जा रहे हैं। इसलिए जनकल्याणार्थ प.पू. आचार्य विराग सागर जी ने आगम ग्रंथों के परिप्रेक्ष्य में यह 'सम्यग्दर्शन' ग्रन्थ लिखा हैं।

सम्यग्दर्शन एक स्वच्छ निर्मल दर्पण के समान है इसमें जो वस्तु जैसी होगी वह उसी रूप में प्रतिबिंबित होगी। यदि हमारा अन्त:करण स्वच्छ व निर्मल दर्पण के समान सम्यग्दर्शन वाला होगा तो उसमें प्रतिबिंबित होने वाला ज्ञान और चारित्र भी सम्यक् होगा। राग-द्वेषादि रूप कषायों से अंत:करण जितना मलिन होगा हमारा सम्यग्दर्शन भी उतना ही मलिन होगा। सम्यग्दर्शन आत्मा का एक अनिर्वचनीय गुण (शक्ति) है जिसके प्रकट होने पर सब कुछ निर्मल (सम्यक्) हो जाता है। मिथ्यात्वादि की मलिनता हट जाती है। इस मलिनता के आत्मा से अल्प रूप में या पूर्ण रूप में पृथक होने अथवा उपशमित होने से

---

1. *आदीए दुव्विसोधण णिहणे तह सुट्ठ दुरणुपाले य।*
पुरिमा पच्छिमा वि हु कप्पाकप्पं जाणंति।
मज्झिमया दिढबुद्धि ब्यग्गमणपा अमोह-लक्खा य।
तम्हा हु जमाचरंति तं गरहंता वि सुज्झंति।। मूलाचार, **7.38, 631**
पुरिमा उज्जुजडा उ वक्कजडा य पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुप्पन्ना उ तेण धम्मो दुहा कए।।
पुरिमाणं दुव्विसोज्झो उ चरिमाणं दुरणुपालओ।
कप्पो मज्झिमगाणं उ सुविसोज्झो सुपालओ।। उत्तराध्ययनसूत्र,**23.26-27**

सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा गया हैं - सराग सम्यग्दर्शन (व्यवहार सम्यग्दर्शन) और वीतराग सम्यग्दर्शन (निश्चय सम्यग्दर्शन) सम्यग्दर्शन के अवान्तर भेद-प्रभेद अपेक्षा भेद को लेकर ही किये गये हैं-सराग सम्यग्दर्शन (व्यवहार सम्यग्दर्शन) और वीतराग सम्यग्दर्शन (निश्चय सम्यग्दर्शन) सम्यग्दर्शन के अवान्तर भेद-प्रभेद अपेक्षा भेद को लेकर ही किये गये हैं। अन्यथा आत्मा का यह सम्यग्दर्शन गुण जो सभी संसारी जीवों में कर्मों के आवरण से ढ़का हुआ है तथा कर्मों के आवरण के हटते ही प्रकट हो जाता है, एक ही प्रकार का है। ऐसे सम्यग्दर्शन को शब्दों के द्वारा सुव्यवस्थित एवं सरल शैली में समझाना अतिकठिन कार्य है।

प.पू.आचार्य विराग सागर जी की इस कृति का प्रकाशन ई.**2001** में जरुर हुआ था, परन्तु उसका न तो सम्पादन किया गया था और न ठीक से प्रूफ रीडिंग की गयी थी जिससे उसमें कई तरह की अशुद्धियाँ रह गई थीं। इसी कारण आचार्य जी ने इसके सम्यक् संपादन की आवश्यकता का अनुभव करते हुए तथा अपनी साधनागत व्यस्तता को देखते हुए, इस गुरुतर दायित्व का कार्यभार मुझे सौंपा।

महाकवि राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी में कहा है कि इस संसार में निश्चय ही दो प्रजापति हैं जो क्रमश: शरीर-निर्माण में तथा यौवन-प्रदान करने में दक्ष हैं। एक प्रजापति ब्रह्मा है जो पहले कुमारियों के शरीर को बनाता है और दूसरा प्रजापति कामदेव है जो बाद में उन्हें तराश कर उनमें यौवन प्रकट करता है।[2] इसी तरह लेखक की रचना को सजाने-संवारने का कार्य संपादक का होता है। आप जानते हैं कि संपादन - कार्य एक टेढ़ी खीर होती है, यदि ग्रंथ में कुछ भी कमी रह जाती है तो सीधे संपादक पर मढ़ दी जाती है। मैं अल्पज्ञ कैसे इसका संपादन कर सकता हूँ ? फिर भी गुरु-आदेश से यथाशक्य संपादन कर रहा हूँ। इसमें जो अशुद्धियाँ हों उन्हें अल्पज्ञ जानकर क्षमा करेंगे तथा मार्गदर्शन करेंगे जिससे अगले संस्करण में उन्हें दूर किया जा सके। इसके संपादन में यद्यपि कई बाधायें आई, परंतु धीरे-धीरे वे दूर हुई और 'सम्यग्दर्शन' प्रकट हुआ।

संपादन करते हुए मैंने सर्वप्रथम इस ग्रंथ को विषयानुसार निम्न आठ अध्यायों में विभक्त किया हैं - **1.** सम्यग्दर्शन की महिमा, **2.** मिथ्यादर्शन, **3.** सम्यग्दर्शन का लक्षण, उत्पत्ति एवं भेद-प्रभेद, **4.** औपशमिक, क्षायोपशमिक एवं क्षायिक सम्यग्दर्शन, **5.** व्यवहार (सराग) तथा निश्चय (वीतराग) सम्यग्दर्शन, **6.** सम्यग्दर्शन के गुण, अङ्ग, अतिचार और दोष **7.** सम्यग्दृष्टि की विशेषताएँ, और **8.** उपसंहार।

---

2. *णूणं दुवे इह पआवइणो जअम्मि,*
जे देहणिम्मवणजोव्वणदाणदक्खा ।
एक्को घडेउ पढमं कुमरीणमंगं,
कंडारिऊण पअडेइ पुणो दुईओ ॥ कर्पूरमञ्जरी, **3.17**

अंत में परिशिष्ट में संकेत एवं संदर्भ ग्रंथ-सूची दी गयी है। उद्धरणों में तथा मूलपाठ में जो प्रूफ-रीडिंग संबंधी या-भाषा संबंधी अशुद्धियाँ रह गई थीं उन्हें यथाशक्य ठीक किया गया है। कई उद्धरणों को मूलपाठ से मिलाया गया है, क्योंकि कुछ स्थानों पर 'न' छूट जाने से, 'हल्' का चिन्ह छूट जाने से विपरीत अर्थ हो गया था। संकेत-सूची, संदर्भग्रंथ-सूची, उद्धरणों आदि को नवीनरूप से संयोजित किया गया है। कहीं-कहीं वचनिका हिन्दी का प्रयोग था जिसे आधुनिक साहित्यिक हिन्दी में परिवर्तित किया गया है। प्रस्तावना के माध्यम से आचार्यश्री जी के आशय को प्रकारान्तर से प्रस्तुत किया गया है। वहाँ उद्धरण इसलिए नहीं दिये गये हैं, क्योंकि आचार्यश्रीने यथावसर उद्धरण दिये है।

मैं आचार्य जी का ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे इस योग्य समझा और यह दायित्व सौंपा। इस कार्य से मेरे ज्ञान में वृद्धि हुई है। आचार्य श्री जी से समय-समय पर मार्गदर्शन मिलता रहा है। इस कार्य के संपादन में ब्र. पंकज जैन जी को नहीं भुलाया जा सकता है, क्योंकि पत्राचार आपके माध्यम से ही होता था। संघस्थ सभी साधु एवं साध्वियों का भी मुझे आशीर्वाद रहा है। अत: उनका भी कृतज्ञ हूँ। मेरी धर्मपत्नी डॉ.मनोरमा जैन धन्यवाद की पात्र है जो मुझे सदा प्रेरणा एवं सहयोग देती रहीं। मैं अपने गुरु प्रोफेसर उदयचंद्र जी का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने शुभाशीष लिखकर मेरा उत्साह बढ़ाया। डॉ.कमलेश कुमारजी तथा पं.धनपाल म.हाबळे जी का भी आभारी हूँ जिन्होंने अपना अभिमत लिखा। ग्रंथ का प्रकाशन तब तक संभव नहीं है जब तक अर्थ सहयोग न हो, एतदर्थ मैं वापी निवासी श्री महावीर चंद्र पाटनी एवं जिनेन्द्र जैन का विशेष आभारी हूँ, आपने अपनी प्रशंसा से दूर रहते हुए अर्थसहयोग दिया है, पूर्व में भी दिया था। अक्षरसज्जा, मुद्रक एवं प्रकाशक को भी धन्यवाद देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने इस ग्रंथ को यह रूप दिया है।

मैं पुन: सभी आचार्यों, मुनियों एवं विद्वानों से नम्र निवेदन करता हूँ कि अपने बहुमूल्य सुझावों से हमें उपकृत करेंगे, क्योंकि शास्त्ररूपी समुद्र से रत्न का निकालना अतिकठिन है। कहा है – 'को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे'।

अंत में प.पू.आचार्यश्री के प्रति प्रणामाञ्जलि-

सद्धर्मानन्दपूर-प्रसृत-सुरसरित्याप्लुताखर्वभावं,
निर्व्याजं भीतिशून्यं प्रवचनमतुलं ज्ञानविज्ञानतत्त्वम्।
लोकानां प्राप्य कर्णौ झटिति निरसयद् दोषपुञ्जं मन:स्थं,
जीयादाचारपोषं जगति सकल-शास्त्रज्ञ-वैराग्यमूर्ते: ॥

दीपावली, वी.नि.सं.**2529** (प्रोफेसर सुदर्शनलाल जैन)
दिनाँक : **4/11/2002** उपाध्यक्ष, अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद्

शुभाशंसा

प्रात: स्मरणीय परमपूज्य आचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज द्वारा लिखित 'सम्यग्दर्शन' का अवलोकन कर तथा उसका मनोयोगपूर्वक अध्ययन कर चित्त प्रसन्न हो गया। इस लघु पुस्तक में आचार्य श्री ने सम्यग्दर्शन - विषयक समग्र चिन्तन को 'गागर में सागर' की तरह भर दिया हैं। प्रत्येक भव्यात्मा का कर्तव्य है कि यदि वह अपना कल्याण करना चाहता है तो वह जिनागम में वर्णित मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करें।

पूज्य आचार्यश्री जिनागम के विशिष्ट अध्येता, चिन्तक और उपदेष्टा हैं। इन्होंने अपना समग्र जीवन जिनवाणी के अध्ययन और अध्यापनपूर्वक भव्यात्माओं के कल्याण में समर्पित कर दिया है। इनका प्रत्येक वाक्य प्रामाणिक, प्रेरणाप्रद और हितकारी हैं। आपने कुछ वर्ष पूर्व शुद्धोपयोग नाम एक महत्त्वपूर्ण लघुपुस्तक लिखी थी। उस समय समाज में तथा विद्वानों में भी 'शुद्धोपयोग' के विषय में कुछ भ्रान्तियाँ प्रचलित थी कि शुद्धोपयोग किस गुणस्थान से प्रारंभ होता है ? तब आपने जिनोपदिष्ट आगम के अनेक उद्धरण देकर उन भ्रान्तियों को दूर कर यह सिद्ध कर दिया था कि शुद्धोपयोग सप्तम गुणस्थान से प्रारंभ होता है। उस पुस्तक का विद्वत्समाज में विशेष आदर हुआ था ।

इस 'सम्यग्दर्शन' ग्रंथ के अध्ययन से हमें ऐसा लगेगा कि हमने अपने जीवन को सफल कर लिया है। इस ग्रंथ की प्रत्येक पंक्ति चिन्तन, मनन और हृदय में धारण करने योग्य है। ऐसी उत्तम पुस्तक के लेखक, संपादक, प्रकाशक तथा प्रकाशन में सहयोग करने वाले महानुभाव हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

परमपूज्य आचार्यश्री का सम्यग्दर्शन निश्चल है, सम्यग्ज्ञान गंभीर है और सम्यक्चारित्र अचल हैं। मैं आचार्यश्री के उच्चकोटी के रत्नत्रय से प्रभावित हूँ। आपके दर्शन करने से और प्रवचन सुनने से मन पवित्र होता है। मैं आपके चरणों में शत-शत वंदन करता हूँ।

वाराणसी
दिनांक : 20/9/2002

चरण-चंचरीक
प्रॉफेसर उदयचंद जैन
पूर्व विभागाध्यक्ष जैन-बौद्धदर्शन विभाग
काशी हिन्दू विश्व विद्यालय

अभिमत

परम पूज्य आचार्यश्री **108** विराग सागर जी महाराज ने अपने गहन अध्ययन और चिन्तन से जिन मुक्ता-मणियों को खोजा हैं वे 'सम्यग्दर्शन' नामक प्रस्तुत लघु ग्रंथ में समाहित हैं। पूज्य आचार्यश्री ने जो भी लिखा हैं उसकी ससंदर्भ आगम-वाक्यों से पुष्टि की हैं, जिससे यह ग्रंथ एक लघु शोधप्रबंध बन गया है।

इस में पूज्य आचार्यश्री ने सम्यग्दर्शन के विविध रूपों से परिचित करा कर एक महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न किया हैं। इसका सुंदर संपादन सराहनीय है। आशा है, विद्वज्जगत में इसका पर्याप्त समादर होगा। इतनी अच्छी प्रस्तुति के लिए बुन्देलखंड की माटी के अमर-गौरव आचार्यश्री के चरणों में सविनय त्रिबार नमोऽस्तु ।

वाराणसी
दिनांक : **22/9/2002**

डॉ. कमलेशकुमार जैन
अध्यक्ष, जैन-बौद्धदर्शन विभाग
काशी हिन्दू विश्व विद्यालय

****

अभिप्राय

परम पूज्यश्री विरागसागरमहाराजमहोदयैः लिखितः 'सम्यग्दर्शनग्रंथः' मया संपूर्णतया वाचितः। अस्मिन् ग्रन्थे विरागसागरमहोदयः सम्यग्दर्शनस्य 'वीतरागमहासागरं' विनिर्मितवानस्ति। तत्र तैः सम्यग्दर्शनस्य महिमातीव्रोत्कृष्टप्रकारेण गीतास्तीति अहं मन्ये। तैः सम्यग्दर्शनस्य निर्मलदर्पणं यद् दर्शितमस्ति, तत्कौतुकास्पदं बहुमानास्पदं चास्ति, नात्र सन्देहः। एषो लघुकायग्रंथः संपूर्णजिनागमस्य अमृतमस्ति। मिथ्याज्ञानं तु विषमस्ति। यस्य हृदये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-सूर्यः प्रकाशितोऽस्ति, सः मोक्षानन्दसाम्राज्यं सम्प्राप्नोति। अस्य संपादन- कार्यमतिसुन्दरं जातम्।

अतोऽहं मम 'अभिप्रायाञ्जलिम्' आचार्यविरागसागरमहाराजमहोदयानां पवित्रतमे करकमलद्वये अतीवविनम्रभावेन समर्पयामि।

विश्रामबाग : सांगली
दिनांक : **9/9/2002**

धनपाल म. हाबळे
(विरागसागरमहोदयानां शिष्यः)

प्रस्तावना

रत्नत्रय, आध्यात्मिक एवं लौकिक समृद्धि में हेतु

जैनधर्म में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को 'त्रिरत्न' कहा जाता हैं। सांसारिक जीवन में जैसे लौकिक-समृद्धि प्रदायक हीरा, मोती, पन्ना आदि रत्नों का महत्त्व हैं वैसे ही आध्यात्मिक जगत् में चरम-समृद्धि रुप मोक्ष-प्रदायक इन सम्यग्दर्शनादि त्रिरत्नों का महत्व हैं। इतना विशेष है कि सम्यग्दर्शनादि रत्न न केवल आध्यात्मिक समृद्धि के जनक हैं अपितु असंदिग्धरूप से लौकिक-समृद्धि के भी प्रापक हैं।

रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन का महत्त्व

जैन शास्त्रों में कही सम्यग्दर्शन की, कहीं सम्यग्ज्ञान की और कही सम्यक्चारित्र की महत्ता का पृथक् - पृथक् उद्घोष किया गया हैं, परंतु इतना सुनिश्चित है कि मोक्षार्थी का एक ही मोक्षमार्ग है जो इन तीनों के सम्मिलित रूप से बनता है। इनके पृथक् - पृथक् रहने पर मोक्ष-द्वार नही खुलता है। यहाँ इतना विशेष है कि जहाँ कहीं भी सम्यग्दर्शन का, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की अपेक्षा अधिक महत्त्व बतलाया गया है वहाँ उसका कारण है सम्यग्दर्शन का, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का आधार-स्तंभ होना। क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सम्यक्पने को प्राप्त नहीं होते हैं। वृक्ष जैसे बिना मूल (जड़) के और महल बिना नींव के नहीं टिक सकते हैं वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं ठहर सकते हैं। इसका यह भी तात्पर्य नहीं है कि सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का महत्त्व नहीं हैं क्योंकि जैसे फल के बिना वृक्ष (मूल) मात्र से तथा महल के बिना नींव मात्र से अभीष्ट-सिद्धि नहीं होती है वैसे ही सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के बिना केवल सम्यग्दर्शन से भी पूर्ण अभीष्ट सिद्धि नहीं मिलती है, इतना अवश्य है कि सम्यग्दर्शन के रहने पर कभी न कभी सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की पूर्णता होगी अवश्य और तब तीनों की एकत्र उपस्थिति में मोक्षमार्ग प्रशस्त होगा, पृथक्-पृथक् रहने पर नहीं। इसलिए आचार्य उमास्वामी ने तत्वार्थसूत्र में कहा हैं -

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। त.सू **1/1**

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान यद्यपि एकसाथ होते हैं परंतु सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान सम्यक् नहीं हो सकता तथा सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान के बिना चारित्र भी सम्यक् नही हो सकता है। अतः आचार्य पूज्यपाद महाराज ने सर्वार्थसिद्धि में और कविवर राजमल्ल ने पंचाध्यायी में कहा हैं -

ज्ञानस्य सम्यग्व्यपदेश - हेतुत्वात्। सर्वार्थसिद्धि, **1.1**
स धर्मः सम्यग्ज्ञप्तिचारित्रत्रितयात्मकः।
तत्र सद्दर्शनं मूलं हेतुरद्वैतमेतयोः॥ पञ्चाध्यायी, **2.716**

वस्तुत: सम्यग्दर्शन वह पारसमणि है जिसके संसर्ग से लोह-तुल्य भी ज्ञान और चारित्र स्वर्णवत् सम्यक्पने को प्राप्त हो जाते हैं। सम्यग्दर्शन की उत्कृष्टता का प्रतिपादन करते हुए रयणसार में भी कहा है।-

सम्मविणा सण्णाणं सच्चारित्तं ण होदि णियमेण।
तो रयणत्तय-मज्झे सम्मगुणुक्किट्ठमिदि जिणुद्दिट्ठं ॥46॥

अर्थ-सम्यग्दर्शन के बिना नियम से सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं होते, इसीलिए रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन उत्कृष्ट है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा हैं। वस्तुत: सम्यग्दर्शन के बिना, चारित्र, तप आदि यथेष्ट फलदायक नहीं होते। सम्यग्दर्शन रत्नत्रय का सार है, सुख का निधान है तथा मोक्षप्राप्ति का प्रथम सोपान है। ऐसा ही कुन्दकुन्दाचार्य ने दर्शनपाहुड में कहा हैं -

एवं जिणपण्णत्तं दंसण-रयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय-सोवाणं पढम-मोक्खस्स ॥ 21॥

सम्यग्दर्शन के बिना न तो मुनिधर्म संभव है और न गृहस्थधर्म। अतएव कविवर राजमल्ल जी ने पञ्चाध्यायी में कहा है -

तत: सागाररूपो वा धर्मोऽनगार एव वा।
सदृक्पुरस्सरो धर्मो न धर्मस्तद्विना क्वचित् ॥ 2.717॥

सम्यक्त्व से बढ़कर न तो कोई मित्र हैं, न बंधु हैं और न सम्पत्ति हैं। मिथ्यात्व से बढ़कर कोई शत्रु नहीं, रोग नहीं और कोई अंधकार नहीं हैं। वस्तुत: मिथ्यात्वी नर, पशु के समान है और सम्यक्त्व से सहित पशु भी मनुष्यवत् है। सागारधर्मामृत में पं.आशाधर जी ने ठीक ही कहा है -

नरत्वेऽपि पशुयन्ते मिथ्यात्वग्रस्त - चेतस:।

पशुत्वेऽपि नरायन्ते सम्यक्त्वव्यक्त-चेतना: ॥1/4॥

वस्तुत: सम्यग्दर्शन सहित चाण्डाल भी भस्म से ढ़की हुई चिनगारी के समान है जो समय आने पर समस्त कर्मों के दहन की सामर्थ्य रखती है।

सम्यग्दर्शन का महत्त्व न केवल जैन धर्म में है अपितु बौद्ध, वेदान्त आदि सभी धर्मों में हैं।

सम्यग्दर्शन-विषयक कतिपय प्रश्न

अब प्रश्न है कि यह सम्यग्दर्शन है क्या ? इसकी पहचान क्या है ? इसकी प्राप्ति कैसे होती है? क्या इसके भेद-प्रभेद हैं ? इसका अधिकारी कौन है ? इसमें उत्कृष्टता और हीनता लाने वाले कारण कौन हैं ? सम्यग्दर्शन से युक्त और सम्यग्दर्शन से रहित जीवों में

अंतर क्या है ? क्या सभी देव सम्यग्दर्शन वाले होते हैं ? क्या सभी नारकी सम्यग्दर्शन-विहीन होते हैं ? सम्यग्दर्शन वाले जीव की संसार में स्थिति कितने काल तक रहती है ? क्या एक बार सम्यग्दर्शन होने पर छूट भी सकता है ? इत्यादि प्रश्नों का समाधान निम्नलिखित आलेख में संक्षेप में निश्चय एवं व्यवहारिक शैली में किया गया है तथा इसी पुस्तक में परम पूज्य आचार्य विराग सागर जी ने विस्तार से शास्त्रीय शैली में सप्रमाण विवेचन किया है ।

सम्यग्दर्शन का अर्थ (लक्षण)

'सम्यग्दर्शन' शब्द 'सम्यक्' और 'दर्शन' इन दो शब्दों के संयोग से बना है । व्याकरण की दृष्टि से 'सम्यक्' शब्द 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'अञ्च्' धातु से 'क्विन्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है जिसका अर्थ होता है – प्रशंसनीय, प्रशस्त, पूज्य, यथार्थ या सत्य । 'दर्शन' शब्द 'दृश' धातु से ल्युट् (अन) प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है जिसका अर्थ है – 'देखना' ।

इस तरह सम्यग्दर्शन का शाब्दिक अर्थ हुआ   – यथार्थदृष्टि, प्रशस्तदृष्टि या सत्यदृष्टि ।

जैन-परम्परा में सम्यग्दर्शन को सम्यक्त्व तथा सम्यग्दृष्टि (सम्यग्दर्शन वाले से अभेद मानकर) शब्दों से भी कहा गया है । यहाँ सम्यग्दर्शन के शाब्दिक अर्थ को सर्वथा न छोड़ते हुए 'सम्यक्श्रद्धा' अर्थ किया गया है जिसका तात्पर्य है जैन धर्म में प्रतिपादित जीवादि पदार्थों की सत्यता में श्रद्धा (अटूट विश्वास) होना अथवा जैनधर्म के सच्चे देव (अर्हन्त व सिद्ध), शास्त्र (जिनवाणी) और गुरु (आचार्य-उपाध्याय-मुनि) में श्रद्धा होना । सामान्यत: 'दर्शन' शब्द चक्षु इन्द्रिय से देखने के अर्थ में प्रयुक्त होता है, परंतु यहाँ 'दर्शन' शब्द का अर्थ मात्र चक्षु इन्द्रिय का बोध नहीं है अपितु इसमें पञ्चेन्द्रिय-बोध, मन:बोध और आत्मबोध सभी समाहित हैं ।

'सम्यग्दर्शन' का 'श्रद्धापरक' अर्थ करने का कारण है – 'श्रद्धा के बिना सद्दृष्टि की प्राप्ति की कठिनता ।' श्रद्धा को अन्धविश्वास नहीं समझना चाहिए । क्योंकि श्रद्धा के पूर्व 'सम्यक्' शब्द जुड़ा है । यह श्रद्धापरक अर्थ व्यवहार की दृष्टि से है अन्यथा 'आत्मबोध' या 'स्व-परभेददृष्टि' या सद्दृष्टि, विवेक, विवेकदृष्टि, विवेकजागृति, तत्वार्थ-श्रद्धान, तत्त्व-प्रतीति ये सभी शब्द एकार्थक हैं । छद्मस्थ (सामान्य) जीवों के लिए व्यवहार से जिनोपदिष्ट तत्त्वों का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है, पश्चात् उन्हें आत्मबोध रूप निश्चय सम्यग्दर्शन हो जाता है ।

सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि की पहचान

सम्यक्त्व गुण वस्तुत: दृष्टि-परिवर्तन (रागद्वेषमयी दृष्टि छोड़कर आध्यात्मिक दृष्टि में प्रवेश) है । इससे सम्यग्दृष्टि जीव विवेकरूपी दिव्य-ज्योति के प्रकाश में अपनी जीवन-यात्रा प्रारंभ करता है । उसका मोक्षमार्ग ज्योतिर्मय हो जाता है और वह अपने लक्ष्य

की ओर निरंतर गतिशील बना रहता है । जल से भिन्न कमल की तरह वह मोह-माया रूपी पङ्क से निर्लिप्त होता है । अपने मन, वचन और काय पर संयम रखते हुए आत्मानुशासित होता है । सुख:दु:ख, लाभ-हानि, यश-अपयश आदि अनुकूल एवं प्रतिकूल सभी परिस्थितियों में समभाव रखता हैं । अन्तर्मुखी होकर निजदोषों का निरीक्षण करता हैं । कर्मबंधन में हेतुभूत मिथ्यात्व आदि शत्रुओं से निज आत्मा को सुरक्षित रखता हैं ।

जैसे घोड़े को लगाम से, हाथी को अंकुश से, कार को ब्रेक से नियंत्रित करते हैं वैसे ही आत्मा को संसार-परिभ्रमण से नियंत्रित करने के लिए सम्यग्दर्शन की आवश्यकता है । इससे मन की चञ्चलता दूर हो जाती है, अनैतिक आचरण से विरक्ति हो जाती है, निर्भीकता आ जाती है, कायरता पलायन कर जाती है, आलस्य-ईर्ष्या आदि दुर्गुण समाप्त हो जाते हैं, प्रयत्नपूर्वक (देख- भालकर) सभी क्रियायें करने से नवीन पापकर्म का बंध नहीं करता है, गुणीजनों के प्रति अनुराग रखता है, दीन-दुखियों के प्रति करुणाशील रहता है, प्राणीमात्र को आत्मवत् समझता है, पारिवारिक एवं सांसारिक कार्यों(व्यापार आदि) को समभाव से करता हुआ निर्लिप्त रहता है, सच्चे देव, शास्त्र और गुरु में प्रगाढ़ श्रद्धा रखता है, संसार की नश्वरता को जानता है, शरीर, इन्द्रिय आदि से आत्मा को पृथक् समझता है, स्वच्छ दर्पण की तरह निर्मल आत्म-परिणामों वाला होता है, शुद्ध दानादि क्रियाओं को करता है, आदि । इन बाह्य-चिन्हों से हम सम्यग्दृष्टि को पहचान सकते है ।

इनसे विपरीत आचरण वाला मिथ्यादृष्टि होता है । मिथ्यादृष्टि भी कभी-कभी सम्यग्दृष्टि की तरह चेष्टायें करता है परंतु उसके आभ्यन्तर भावों में कपटभाव छिपा रहता है । सांसारिक सुखों की प्राप्ति ही उसका लक्ष्य होता है । सम्यग्दृष्टि इहलौकिक एवं पारलौकिक सभी सांसारिक सुखों की अपेक्षा आत्मसुख की प्राप्ति को अपना मुख्य लक्ष्य बनाता है ।

सम्यग्दर्शन-प्राप्ति का अधिकारी और उसकी संसार-स्थिति

अभव्य जीवों को कभी भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नही हो सकती है क्योंकि अभव्य जीव वे हैं जिनमें सम्यक्त्व गुण कभी भी प्रकट नही हो सकता है । भव्य जीव (जिनमें वो शक्ति है जो सम्यक्त्व गुण को प्रकट कर सके) सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का अधिकारी है । सम्यक्त्व-प्राप्ति की योग्यता रखने वाले सभी भव्यजीव सम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं अपितु उन्ही भव्यजीवों में सम्यग्दर्शन प्रकट होता है जिनका संसार मुक्ति में मात्र अर्द्धपुद्गलपरावर्तन काल शेष रह गया है । अत: कहा गया हैं कि सम्यक्त्व का एक बार स्पर्श कर लेने वाला जीव कम से कम अन्तर्मुहूर्त में और बीच में छूट जाने पर अधिक से अधिक अर्द्ध-पुद्गल-परावर्तन काल में अवश्य संसार से मुक्त हो जाता है । सम्यग्दृष्टि जीव निम्न सात स्थानों के आयुष्य का नया कर्मबंधन नहीं करता है – नरकगति, तिर्यञ्चगति, स्त्री, नपुंसक, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देव-पर्याय । यदि सम्यक्त्व स्थायी रहे (छूटे नही) तो जीव कम से कम तीसरे भव में और अधिक से अधिक सात-आठ भवों में मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

अपेक्षाभेद से सम्यग्दर्शन के भेद-प्रभेद

सम्यग्दर्शन के भेदों का विचार कई दृष्टियों से किया गया हैं । जैसे –

(क) निसर्गज और अधिगमज (परोपदेश से निरपेक्ष और सापेक्ष की अपेक्षा) – जीव संसार में अनादिकाल से दृष्टि-दोष के कारण परिभ्रमण कर रहा है । जड़-चेतन में भेद न कर सकने के कारण जड़ (पुद्गल) को ही चेतन (आत्मा) समझ रहा है । उसे सत्य का परिज्ञान दो विधियों से हो सकता है –

1. स्वत: परीक्षण करके सत्य का साक्षात्कार करना ।
2. तत्त्ववेत्ता पर श्रद्धान करके वस्तु तत्त्व को जानना ।

जैसे कोई एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला में स्वयं प्रयोग **(Experiment)** करके किसी सत्य को अन्वेषण करता है वस्तु-तत्त्व के यथार्थ स्वरूप को जान लेता है । दूसरा वैज्ञानिक प्रथम वैज्ञानिक के कथनों पर विश्वास करके वस्तु-तत्त्व के यथार्थरूप को जान लेता है । यहाँ एक वैज्ञानिक स्व-अनुभव से और दूसरा श्रद्धा के माध्यम से तत्व को जानता है । इसी तरह उपलब्धि की बाह्य-विधि की अपेक्षा सम्यग्दर्शन एक प्रकार का होकर भी दो प्रकार का हो जाता हैं – निसर्गज (पर-सापेक्षता के बिना) और अधिगमज (परोपदेशादि की सापेक्षता वाला) ।

(ख) औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक (उपशमादि की अपेक्षा) – सम्यग्दर्शन की उपलब्धि वस्तुत: स्वानुभव से होती है, केवल चिन्तन या ज्ञान से नहीं क्योंकि जड़ और चेतन भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा ज्ञान तो बालक से लेकर नौ पूर्वधारी मिथ्यादृष्टि को भी होता है तथा नौ पूर्वधारी मिथ्यादृष्टि, जीव-अजीव आदि तत्त्वों पर विस्तृत बौद्धिक व्याख्यान दे सकता है तथा अनेक ग्रंथों को भी लिख सकता हैं परंतु उसे सम्यग्दर्शन तब तक नहीं हो सकता जब तक वह आध्यात्मिक स्तर पर अन्तर्यात्रा करके स्थूलदेह (औदारिक आदि शरीर) और सूक्ष्मदेह (कार्माण-तैजस शरीर) से अपने को अलग नहीं अनुभव करता है, अर्थात् शरीर से भिन्न निज चैतन्य स्वरूप का दर्शन होना ही सम्यग्दर्शन है । जड़-चेतन को पृथक-पृथक जान लेने अथवा उनके चिन्तन करने मात्र से भी सम्यग्दर्शन प्रकट नहीं होता है अपितु इन बाह्य साधनों का आलम्बन करके जब अन्तर्मुखी होकर स्व-चैतन्य का साक्षात्कार करता है तभी सम्यग्दर्शन होता है ।

सम्यग्दर्शन या सम्यक्त्व यह आत्मा का निजधर्म है जो दर्शनमोहनीय कर्म के उदय के कारण अनादिकाल से मिथ्यास्वादरूप हो रहा है । सम्यक्त्व का घात करनेवाली (सम्यक्त्व को प्रकट न होने देने वाली) मोहनीय की सात कर्म प्रकृतियों के उपशम, क्षय या क्षयोपशम होने पर यह सम्यक्त्व प्रकट होता है । वे सात कर्मप्रकृतियाँ हैं – दर्शनमोहनीय की तीनों (मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति) तथा चारित्र मोहनीय की चार (अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ) इनके उपशम (कुछ समय के लिए उदय में न आना या फलोन्मुख न होना) होने पर औपशमिक सम्यक्त्व प्रकट होता है । इन्हीं कर्मप्रकृतियों के क्षय (पूर्णत: विनाश या सदा के लिए आत्मा से अलग हो जाना) होने पर क्षायिक

सम्यक्त्व तथा इन्हीं कर्मप्रकृतियों के क्षयोपशम (आंशिक क्षय और आंशिक उपशम) होने पर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व (वेदक सम्यक्त्व) गुण प्रकट होता है ।

कषाय पाहुड में बतलाया है कि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव (संज्ञी, पर्याप्तक) वेदक-काल न होने पर सर्वप्रथम प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। यह जीव उक्त सम्यक्त्व (प्रथमोपशम) से च्युत होकर नियम से मिथ्यात्व में ही जाता है, अन्यत्र नहीं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के बाद द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति वेदक सम्यग्दृष्टि के सातिशय अप्रमत गुणस्थान में ही होती है अर्थात् यह औपशमिक सम्यक्त्व चतुर्थ गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है। इस सम्यक्त्व वाला जीव जब अनन्तानुबंधी चार कषायों तथा दर्शनमोहनीय की तीनों कर्म-प्रकृतियों की विसंयोजना करता है तब द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि या द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव के जब दर्शनमोहनीय की सम्यक्त्व प्रकृति का उदय हो जाता है तो उसे वेदक सम्यक्त्व कहते हैं। इसे ही क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते है। इसमें दर्शन मोहनीय की सम्यक्त्व प्रकृति का उदय रहने से सम्यक्त्व में कुछ मलिनता रहती है और शंका आदि होने पर अतिचार भी हो जाता है।

क्षायिक सम्यक्त्व को वही जीव प्राप्त कर सकता है जो वेदक सम्यक्त्व वाला है। इसकी उत्पत्ति केवली और श्रुतकेवली के पादमूल में स्थित कर्मभूमिज मनुष्य को ही होती है। यहाँ इतना विशेष है कि जसने तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके भी उसी भव में यदि क्षायिक सम्यक्त्व को नहीं प्राप्त किया है तो उसे अंतिम भव में स्वनिमित्त से भी क्षायिक सम्यक्त्व की उत्पत्ति हो जाती है। क्षायिक सम्यक्त्व वाला जीव निरंतर मुक्ति की ओर बढ़ता जाता है, उसका पतन नहीं होता है, जबकि क्षायिक सम्यक्त्ववत् होते हुए भी उपशम सम्यक्त्व वाले का पतन अवश्यम्भावी है क्योंकि उसकी सम्यक्त्व घातक प्रकृतियाँ दबी रहती है जो समय आने पर उदय को प्राप्त हो जाती हैं। क्षपक-श्रेणी में चढ़ने वाले सभी मुनिराज क्षायिक सम्यक्त्वी ही होते हैं।

इस तरह योग्यता की दृष्टि से अथवा मोहनीय कर्मों के उपशमादि की दृष्टि से उत्पन्न होने वाले सम्यक्त्व के तीन भेद होते हैं। औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व।

सामान्यत: सम्यग्दर्शन तो एक ही प्रकार का है, परंतु विभिन्न अपेक्षाओं से आगमों में सम्यग्दर्शन के अन्य कई प्रकार से भी भेद-प्रभेद किये गये हैं।

(ग) सराग और वीतराग सम्यक्त्व (धारक व्यक्ति की अपेक्षा)- सम्यक्त्व का धारक व्यक्ति यदि कथञ्चित सरागी है तो उसका सम्यक्त्व सरागसम्यक्त्व कहलाता है। यदि सम्यक्त्व का धारक व्यक्ति वीतरागी है तो उसका सम्यक्त्व वीतरागसम्यक्त्व कहलाता है।

(घ) व्यवहार (सराग) और निश्चय (वीतराग) सम्यक्त्व (व्यवहार और परमार्थ

की अपेक्षा) – जिनोपदिष्ट (सच्चे देव, शास्त्र व गुरु से ज्ञात) जीवादि तत्त्वों को यथार्थ मानकर उन पर श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है । इसके होने पर प्रशम (शान्त-परिणाम), संवेग (संसार से भय या धर्म के प्रति हर्ष), अनुकंपा (दया या मैत्रीभाव) और आस्तिक्य (जीवादि के अस्तित्व में आस्था) ये गुण प्रकट होते हैं । इसमें राग का अंश रहने से इसे सराग सम्यग्दर्शन भी कहते हैं । यह सम्यग्दर्शन निश्चय सम्यग्दर्शन (वीतराग सम्यग्दर्शन) का साधक है ।

निश्चय सम्यग्दर्शन रागादि के विकल्पों से रहित निज शुद्धात्मानुभूति लक्षण वाला होता है । राग का सर्वथा अभाव होने से इसे वीतराग सम्यक्त्व भी कहते है । इसके होने पर अतीन्द्रिय सुखामृत का आस्वादन होता है । यह सप्तम गुणस्थान से आरंभ होता है ।

(ड) दस, संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद (आज्ञादि की अपेक्षा) -

1. आज्ञादि की अपेक्षा दस भेद हैं - आज्ञा, मार्ग, उपदेश, सूत्र, बीज, संक्षेप, विस्तार, अर्थ, अवगाढ़ और परमावगाढ़ सम्यक्त्व ।

2. शब्द-कथन की अपेक्षा सम्यक्त्व के संख्यात भेद होते हैं ।

3. श्रद्धान करने वालों की अपेक्षा सम्यक्त्व के असंख्यात भेद सम्भव हैं ।

4. श्रद्धान करने योग्य पदार्थों की अपेक्षा सम्यक्त्व के अनन्त भेद हो सकते हैं ।

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में आभ्यन्तर एवं बाह्य-कारण

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में आभ्यन्तर कारण दर्शनमोहनीय कर्म की प्रकृतियों का उपशम या क्षयोपशम या क्षय ही है । इसमें चारित्रमोहनीय की अनन्तानुबन्धी कषायों का उपशम या क्षयोपशम या क्षय भी आभ्यन्तर कारण है । इनके उपशम या क्षयोपशम या क्षय के बिना सम्यग्दर्शन अनेक बाह्य-निमित्तों के मिलने पर भी नहीं उत्पन्न होता है । धर्मश्रवण (परोपदेश) आदि बाह्य निमित्त अनेक प्रकार के हैं ।

गतिक्रम से सम्यक्त्व की उत्पत्ति में प्रमुख बाह्य निमित्त

इस संबंध में निम्न विचार हैं –

1. प्रथम तीन नरकों के नारकी जीवों में – धर्मश्रवण, जाति-स्मरण और वेदना ।
2. अन्तिम चार नरकों के नारकी जीवों में – जाति-स्मरण और वेदना ।
3. तिर्यञ्च और मनुष्य गति के जीवों में – जिनबिम्ब-दर्शन, धर्मश्रवण और जाति-स्मरण ।
4. भवनवासी, व्यन्तर एवं ज्योतिष्क देवों में तथा बारहवें स्वर्ग तक के (1-12) वैमानिक देवों में -जिनबिम्ब-दर्शन, धर्मश्रवण, जातिस्मरण और देवर्द्धिदर्शन ।
5. आनत, प्राणत, आरण और अच्युत स्वर्ग के (13-16) वैमानिक देवों में - जिनबिम्बदर्शन, धर्मश्रवण और जातिस्मरण ।

6. नवग्रैवेयक देवों में – धर्मश्रवण और जाति-स्मरण ।
7. अनुदिश और अनुत्तरवासी देवों में – ये देव जन्म से ही सम्यग्दृष्टि होते है यहाँ सम्यग्दृष्टि देव ही जन्म लेते है, मिथ्यादृष्टि नहीं । अत: यहाँ सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में किसी बाह्यनिमित्त का प्रश्न नहीं हैं ।

इन बाह्यनिमित्तों के अतिरिक्त जो अन्य बाह्य निमित्तकारणों का उल्लेख मिलता है उनका इन्हीं में अन्तर्भाव हो जाता है । परम पूज्य आचार्य विराग सागर जी ने इसकी विस्तार से विवेचना की हैं ।

इस समस्त विवरण से स्पष्ट है कि सम्यग्दर्शन का क्या महत्त्व है ? और इसका स्वरूप क्या है ? दु:ख और अशान्ति का मूल है 'मिथ्यादर्शन' और सुख और शान्ति का मूल है 'सम्यक्त्व' । अनासक्त व्यक्ति ही सम्यग्दृष्टि है जैसा कि राजस्थानी किसी कवि ने कहा है –

सम्यग्दृष्टि जीवडा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल ।
अन्तरगत न्यारो रहे, ज्यों धाय खिलाबे बाल ॥

अर्थ – जिस प्रकार धाय मालिक के बच्चे को खिलाती -पिलाती है और उसका लालन-पालन करती है फिर भी मन में भाव रखती है कि यह मेरा नहीं है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव भी कुटुम्ब का प्रतिपालन करता हुआ अपने को अन्तरङ्ग से अनासक्त रखता है ।

सम्यग्दर्शन को सही समझने की दृष्टि – आगमों में सम्यग्दर्शन का विवेचन कहीं निश्चयनय की दृष्टि से और कहीं व्यवहारनय की दृष्टि से किया गया है । कहीं-कहीं इन नयों के अवान्तर भेदों (शुद्धनिश्चयनय, अशुद्धनिश्चयनय, उपचरित व्यवहारनय, अनुपचरित व्यवहारनय, सद्भूत-असद्भूत व्यवहारनय आदि अनेक दृष्टि-भेदों) की दृष्टि से विवेचन किया गया हैं । अत: उन सभी कथनों का स्याद्वाद दृष्टि से समायोजन कर लेना चाहिए ।

'सम्यक्त्व' मोक्ष-साधना की आधारभूमि है । अन्तरात्मा तक पहुँचने का द्वार है । इसके स्पर्श के बिना जीवन की सही दिशा का निर्धारण नहीं हो सकता है । वस्तुत: यह एक दिव्यदृष्टि है जिसके होते ही विषयभोग गन्दगी के रूप में त्याज्य लगने लगते हैं । जब तक मनुष्य की इन्द्रियदृष्टि एवं मनोदृष्टि रहती है तब तक वह मिथ्यादृष्टि होता है और उसकी भोगों में रुचि सबल होती रहती है तथा पौद्गलिक सुखों को वास्तविक सुख मानता है । जब मनुष्य, इन्द्रिय-मनोदृष्टि से हटकर बुद्धिदृष्टि वाला होता है तो वह क्षयोपशमलब्धि को प्राप्त कर सकता है और उसकी भोगों में अरुचि उत्पन्न होने लगती है । जब मनुष्य की विवेकदृष्टि या अन्त:दृष्टि जागृत होती है तब वह सम्यग्दृष्टि हो जाता है और वह भोगवासनाओं को उखाड़कर चिद्-अचिद्-ग्रन्थि (आत्म-कर्मबन्धन)को खोल देता है । चिद्-अचिद्-ग्रन्थि के खुलते ही उसे आत्मा में परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं । इस विवेकदृष्टि वाले

सम्यग्दृष्टि मनुष्य को महात्मा गांधी के शब्दों में 'जागृत मनुष्य' कहना सर्वथा युक्तिसंगत है । उत्तरकालीन बौद्ध-ग्रंथों में इसे 'बोधिचित्त' की प्राप्ति कहा है । इसे ही ईसाई-इस्लाम और पारसी धर्मों में धर्मश्रद्धा, धर्म-आस्था या धर्मनिष्ठा कहा गया है । यही 'धर्मश्रद्धा' सभी धर्मों में सम्यग्दर्शन जैसी है ।

वेदान्तविद्या और सम्यग्दर्शन का अधिकारी

'सम्यग्दर्शन' को प्राप्त करने का अधिकार कौन है ? इस संबंध में वेदान्तदर्शन में प्रतिपादित वेदान्तविद्या को ग्रहण करने के योग्य अधिकारी का जो विवेचन मिलता है वह जैनदर्शन की दृष्टि से तुलनीय है (1) –

वेदान्तविद्याग्रहण करने का अधिकारी	सम्यक्त्व-प्राप्त करने का अधिकारी
1. जिसने वेद-वेदाङ्गों का सामान्य अर्थ के आगम-साथ अध्ययन कर लिया है ।	1. जिसने द्वादशाङ्ग तथा तदनुगामी ग्रंथों का सामान्य अध्ययन कर लिया हैं ।
2. जिसने इस जन्म में अथवा पूर्वजन्म में काम्य और निषिद्ध कर्मों का परित्याग करके तथा नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित का व उपासना के अनुष्ठान द्वारा समस्त पापों को दूर करके निर्मल अन्तःकरण को प्राप्त कर लिया है ।	2. जिसने इस जन्म में अथवा पूर्वजन्म में काम्य (फलाभिलाषा या निदानबंध वाले) तथा निषिद्ध (हिंसादी) कर्मों परित्याग किया है तथा जिसने नित्य-कर्म (देव-वंदना आदि), नैमित्तिक कर्म (अष्टाह्निका, दशलक्षण व्रत आदि प्रायश्चित (आलोचना या प्रतिक्रमण आदि) व उपासना (पूजा आदि) के अनुष्ठान द्वारा सम्यक्त्व-प्रतिबंधक कर्मों को दूर करके अपने अन्तःकरण को निर्मल बना लिया है ।
3. साधनचतुष्टय से सम्पन्न प्रमाता (जीवात्मा) -	3. साधनचतुष्टय से संपन्न प्रमाता (जीव)-
क. नित्य और अनित्य वस्तु में विवेक से युक्त ।	क. आत्मा और पुद्गल (चेतन और अचेतन) मे भेदबुद्धि (विवेक) से युक्त अथवा श्रेय (सम्यक्त्व) और

1 *अधिकारी तु विधिवदधीतवेदाङ्गत्वेनापाततोऽधिगताखिलवेदार्थोऽस्मिन् जन्मनि जन्मातरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरस्सरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषयता नितान्तनिर्मलस्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता । .... साधनानि नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रार्थफलभोगविरागशमादिषट्कसम्पत्ति-मुमुक्षुत्वानि । - वेदान्तसार, अनुबन्धप्रकरण ।*

			अश्रेय (मिथ्यात्व) का ज्ञाता ।
ख.	इस लोक और परलोक-संबंधी फलभोगों की आकांक्षा से वीतरागी ।	ख.	इस लोक और परलोक संबंधी फलभोगों की कामना (निदान) न करते हुए वीतरागभावी ।
ग.	शम (मन का संयम), दम (इन्द्रियों का संयम), उपरति (विषयोन्मुखता से विरक्ति), तितिक्षा (शीत-उष्ण, सुख-दु:ख, जय-पराजय आदि क द्वन्द्वों में सहिष्णुता),समाधान (वशीकृत मन को गुरुसेवा आदि विषयों में एकाग्र करना) तथा श्रद्धा (गुरु के उपदेश तथा वेदान्त वाक्यों में विश्वास होना) । इन छ: सम्पत्तियों से युक्त होना ।	ग.	सम्यग्दर्शन के पाँच लक्षणों से युक्त होना–शम(प्रशम), संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य । इन पाँचों में ही वेदान्तोक्त छ: संपत्तियों का अनुकम्पा और आस्तिक्य । इन पाँचों में ही वेदान्तोक्त छ: संपत्तियों का अन्तर्भाव हो जाता हैं । जैसे शम में शम, तितिक्षा एवं समाधान का, संवेग और निर्वेद में, दम और उपरित का आस्तिक्य में, श्रद्धा का अनुकम्पा भाव के बिना तितिक्षा के द्वन्द्वों का सहना संभव नही है ।
घ.	मुमुक्षुत्व (मोक्ष प्राप्ति की इच्छा वाला होना) ।	घ.	सम्यक्त्व के लक्षण में आगत 'संवेग' मुमुक्षत्व को ही बतलाता है ।

श्वेताम्बर - आगमों में सम्यग्दर्शन

दिगम्बर-परंपरा के समान ही श्वेताम्बर-परंपरा में सम्यग्दर्शन का विवेचन मिलता है । श्वेताम्बर- आगमानुसार कुछ बिन्दु यहाँ उद्धृत हैं –

1. स्वभाव से अथवा उपदेश से तथाभूत नौ पदार्थों का भावपूर्वक श्रद्धान सम्यग्दर्शन है –

जीवाजीवा य बंधो य, पुण्णं पावासवो तहा ।
संवरो निज्जरा मोक्खो, संति एए तहिया नव ।।
तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं ।
भावेण सद्दहंतस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं ।।

उत्तराध्ययनसूत्र, 28.14-15

2. 'सम्यक्त्व' के बिना ज्ञान एवं चारित्र नही होते। ज्ञान के बिना चारित्र नही होता। दर्शन के होने पर चारित्र भजनीय है। कदाचित् सम्यक्त्व और चारित्र एक साथ होते हैं अथवा पहले सम्यक्त्व होता है। अतः सम्यक्त्वी के ही तप, ज्ञान एवं चारित्र सफल होते हैं....

नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं।
सम्मत्तचरित्ताइं जुगवं, पुव्वं व सम्मत्तं॥
नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं॥

उत्तध्ययनसूत्र, **28.29-30**

दंसणवओ हि सफलाणि हुंति तवनाणचरणाइं।

आचाराङ्गनिर्युक्ति **221**

3. जैसे-जैसे जल निर्मल होता जाता है वैसे-वैसे दृष्टि, रूपादि पदार्थों को स्पष्ट देखती जाती है। जैसे-जैसे तत्त्वरुचि(सम्यग्दर्शन)बढ़ती जाती है वैसे-वैसे तत्त्वज्ञान होता जाता है

जह जह सुज्झइ सलिलं, तह तह रूवाइं पासई दिट्ठी।
इय जह जह तत्तरुई, तह तह तत्तागमो होइ॥

आवश्यकनिर्युक्ति, **1169**

4. दर्शन और ज्ञान एक साथ उत्पन्न होने पर भी दीपक-प्रकाशवत् सम्यग्ज्ञान का कारण है 'सम्यग्दर्शन' –

कारणकज्जविभागो, दीवपगासाण जुगवजम्मे वि।
जुगवुप्पन्नं पि तहा, हेऊ नाणस्स सम्मत्तं॥

आवश्यकनिर्युक्ति, **1170**

5. सम्यक्त्वी, मोक्ष या इन्द्रपद को प्राप्त करते हैं –

सोच्चा य धम्मं अरिहंतभासियं, समाहितं अट्ठपदोवसुद्धं।
तं सद्दहमाणा य जणा, अणाऊ इंदा देवाति य आगमिस्संति॥

सूत्रकृताङ्गसूत्र, **1.6. 29**

6. सम्यक्त्वी पाप नहीं करता तथा सदा अमूढ़ रहता है –

सम्मत्तदंसी न करोति पावं।

आचाराङ्गसूत्र, **1.6.2**

सम्मादिट्ठी सया अमूढे ।

दशवैकालिक, **10.7**

7. सम्यक्त्व के निरुक्तिपरक शब्द और अर्थ हैं – सम्यग्दृष्टि (पदार्थों का सही दर्शन), अमोह (विचारों में अमूढ़ता), शुद्धि या शोधि (मिथ्यात्व मल का हटना), सद्भाव दर्शन (यथावस्थित पदार्थों का वैसा ही दर्शन), बोधि (परमार्थ ज्ञान), अविपर्यय (वस्तु का यथारूप ग्रहण) तथा सुदृष्टि (शोभनदृष्टि)–

सम्मदिट्ठी अमोहो सोही सब्भावदंसणबोही ।
अविवज्जओ सुदिट्ठि त्ति एवमाई निरुत्ताइं ॥

आवश्यकनिर्युक्ति, **862**

8. सम्यग्दृष्टि की दृष्टि होती है – 'ज्ञान-दर्शन लक्षण वाली शाश्वत आत्मा ही मेरी अपनी है, शेष सभी बाह्य-पदार्थ संयोग-लक्षण वाले हैं' –

एको मे सासओ अप्पा, नाणदंसणलक्खणो ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा ॥

महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक **16**

9. 'निसर्गरुचि' आदि सम्यक्त्व के दस प्रकार –

निसग्गुवएसरुई आणारुई सुत्तबीय-रुइमेव ।
अभिगमवित्थाररुई, किरिया संखेवधम्मरुई ॥

उत्तराध्ययनसूत्र, **28.16**

10. 'निःशङ्कित' आदि सम्यक्त्व के आठ अङ्ग –

निस्संकिय-निक्कंखिय-निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ।
उववूह-थिरीकरणं वच्छल्ल-पभावणो अट्ठ ॥

उत्तराध्ययनसूत्र, **28.31**

11. 'दर्शनविशुद्ध' जीव उसी भव में सिद्ध हो जाते है, परंतु तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करते हैं –

दंसणविसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ ।
सोहीए य णं विसुद्धाए तच्च पुणो भवग्गहणं नाइक्कमई ।

उत्तराध्ययन,**29,2** (गद्य)

12. चारित्र से रहित सिद्ध हो सकते हैं; किन्तु सम्यग्दर्शन बिना नहीं –

भद्देण चरित्ताओ, सुट्ठयरं दंसणं गहेयव्वं ।
सिज्झंति चरणरहिया, दंसणरहिया न सिज्झंति ॥

आवश्यकनिर्युक्ति **73**

कतिपय प्रश्नोत्तर

प्रश्न. उपशम सम्यग्दृष्टि जीव क्या सीधे क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो सकता है ?

प्रश्न. नहीं, उपशम सम्यक्त्व से सीधे क्षायिक सम्यक्त्व नही हो सकता है ।

प्रश्न. क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारम्भ कब और किसे होता है ?

उत्तर - तीर्थङ्कर, केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में कर्मभूमिज मनुष्य क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारंभ कर सकता है । श्वेताम्बर-परंपरा में ऐसा कोई उल्लेख नही है । वहाँ विशेषावश्यकभाष्य (गाथा **1321-1323**) में कहा है कि 'आठ वर्ष से अधिक आयु वाला, उत्तम संहनन का धारक, **4-7** गुणस्थानवर्ती मनुष्य, क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है । किन्च, पूर्वबद्ध आयुष्य की अपेक्षा मनुष्यगति में प्रारम्भ प्रक्रिया की पूर्ति चारों गतियों में हो सकती है ।

प्रश्न. क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति कितनी बार होती है ?

उत्तर - क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति एक ही बार होती है । यदि अबद्धायु हो तो उसी भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

प्रश्न. - सम्यक्त्वी जीव किन सात स्थानों के आयुष्य का नया बन्ध नहीं करता है ?

उत्तर - वे सात स्थान हैं - नारकी, तिर्यञ्च, स्त्री, नपुंसक, भवनवासीदेव, वाणव्यन्तरदेव और ज्योतिषीदेव ।

प्रश्न. - 'जिन वच में शङ्का न धार' ऐसा श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन क्या अन्धश्रद्धा नहीं है ?

उत्तर - नहीं, जैनशासन अन्धश्रद्धान की बात नहीं करता अपितु विवेकपूर्वक श्रद्धान की बात करता है । इसलिए 'पृच्छना' (प्रश्न करना) को स्वाध्याय तप कहा गया है ।

दिनाँक : **22** सितम्बर **2002**
वी.नि.सं. **2528**
क्षमावाणी

डॉ.सुदर्शनलाल जैन
प्रोफेसर, संस्कृत-विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय : सम्यग्दर्शन की महिमा 34-38

द्वितीय अध्याय : मिथ्यादर्शन 39-44

(मिथ्यादर्शन का लक्षण, मिथ्यादृष्टि जीव के भेद-प्रभेद, मिथ्यादृष्टि जीव की पहचान, मिथ्यादृष्टि के भावों की विशेषताएँ)

तृतीय अध्याय : सम्यग्दर्शन का लक्षण, उत्पत्ति एवं भेद-प्रभेद 45-59

(सम्यग्दर्शन का व्युत्पत्तिपरक विश्लेषण तथा कुछ प्रश्नोत्तर, सम्यग्दर्शन का लक्षण, सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में कारण, सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के बाह्य कारण, चारों गतियों में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के बाह्य कारण, देवों के देवर्द्धिदर्शन और जातिस्मरण में तथा नारकियों के जाति-स्मरण और वेदनाद्भव कारणों में अंतर, कारणों के स्वामित्व-संबंधी शंका-समाधान, सभ्यग्दर्शन की उत्पत्ति के आभ्यंतर कारण, सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के प्रकार, निसर्गज तथा अधिगमज सम्यग्दर्शन में अन्तर, सम्यग्दर्शन के भेद-प्रभेद)

चतुर्थ अध्याय : औपशमिक, क्षायोपशमिक एवं क्षायिक सम्यग्दर्शन 60-73

(औपशमिक या उपशम सम्यक्त्व का लक्षण, प्रथमोपशम सम्यक्त्व, जन्म के पश्चात् प्रथमोपशम सम्यक्त्व-प्राप्ति योग्य सर्व लघु काल, पाँच लब्धियों का विवेचन, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का विवेचन, क्षायोपशमिक या वेदक सम्यक्त्व का विवेचन, क्षायिक सम्यक्त्व का विवेचन)

पञ्चम अध्याय : व्यवहार (सराग) तथा निश्चय (वीतराग) सम्यग्दर्शन 74-91

(आगम और अध्यात्म, आगमिक व्यवहार सम्यग्दर्शन का विवेचन, तत्त्व विचार, द्रव्य विचार, व्यवहार सम्यग्दर्शन, आगमिक सराग-वीतराग सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन के आज्ञा आदि दश भेंदो के लक्षण, आध्यात्मिक व्यवहार या सराग सम्यग्दर्शन, आध्यात्मिक निश्चय या वीतराग सम्यग्दर्शन, निश्चय-व्यवहार सम्यक्त्व का समन्वय, विशेषार्थ)

षष्ठ अध्याय : सम्यग्दर्शन के गुण, अङ्ग, अतिचार और दोष 92-105

(सम्यग्दृष्टि के गुण, सम्यग्दर्शन के आठ अङ्गों या गुणों के लक्षण, सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार, सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष)

सप्तम अध्याय : सम्यग्दृष्टि की विशेषताएँ 106-114

(सभी भाव ज्ञानमय, सदा निरास्रव व अबन्धक, कर्म करता हुआ भी वह उनसे बंधता नहीं, सभी कार्य निर्जरा के निमित्त हैं, कुध्यान भी कुगति के कारण नहीं, वर्तमान जीवन में ही मुक्तवत्, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में अंतर)

अष्टम अध्याय : उपसंहार 115-119

परिशिष्ट : संकेत - सूची एवं संदर्भ ग्रंथ-सूची 120-123

प्रवचन साहित्य सूची 124-135

श्री सम्यग्दर्शनाय नमः

णमो अरिहंताणं ।

णमो सिद्धाणं ।

णमो आयरियाणं ।

णमो उवज्झायाणं ।

णमो लोए सव्वसाहूणं ।

॥ सम्यग्दर्शनप्राप्त्यर्थं समर्पयामः ॥

श्री सम्यग्दर्शनाय नमः

प्रथम अध्याय

सम्यग्दर्शन की महिमा

।। सम्यग्दर्शनप्राप्त्यर्थं समर्पयामः ।।

मङ्गलाचरण

जयति सुखनिधानं मोक्षवृक्षैकबीजं,
सकलमलविमुक्तं दर्शनं यद्विना स्यात् ।
मतिरपि कुमतिर्नु दुश्चरित्रं चरित्रम्,
भवति मनुजजन्म प्राप्तमप्राप्तमेव ।।

अर्थ :- जिस सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान, मिथ्याज्ञान और चारित्र, मिथ्याचारित्र हुआ करता है तथा प्राप्त हुआ मनुष्य जन्म भी अप्राप्त हुए के समान है ।[1] ऐसे सुख का स्थानभूत, मोक्षरुपी वृक्ष का अद्वितीय बीज तथा समस्त दोषों से रहित सम्यग्दर्शन जयवन्त हो ।

नगर में जिस प्रकार द्वार प्रधान है, मुख में जिस प्रकार चक्षु प्रधान है तथा वृक्ष में जिस प्रकार मूल (जड़) प्रधान है उसी प्रकार ज्ञान, चारित्र, वीर्य एवं तप इन चार आराधनाओं में एक सम्यक्त्व ही प्रधान है ।[2] जिस प्रकार ताराओं में चन्द्र और पशुओं में सिंह प्रधान है उसी प्रकार मुनि एवं श्रावक दोनों प्रकार के धर्मों में सम्यक्त्व ही प्रधान है ।[3]

"सम्यक्त्व के बिना ज्ञान और चारित्र नियम से सम्यक् नहीं होते" अतः रत्नत्रय में एक सम्यक्त्व गुण ही प्रशंसनीय है ।[4] जैसे बाण से रहित धनुर्धारी धनुर्विद्या के अभ्यास से रहित होता हुआ लक्ष्य को प्राप्त नहीं करता है वैसे ही अज्ञानी मोक्षमार्ग के लक्ष्यभूत

---

1. प.पं.वि. 1/77
2. *णगरस्य जह दुवारं मुहस्स चक्खू तरुस्स जह मूलं ।*
   तह जाण सुसम्मत्तं णाणचरणवीरियतवाणं ।। भ.आ.735
3. *जह तारयाण चंदो मयराओ मयउलाण सव्वाणं ।*
   अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावय दुविहधम्माणं ।। भ.पा. 142
4. *सम्मविणा सण्णाणं सच्चारित्तं ण होइ णियमेण ।*
   तो रयणत्तयमज्झे सम्मगुणुक्किट्ठमिदि जिणुद्दिट्ठं ।। र. सा. 46

परमात्म तत्त्व को प्राप्त नहीं करता है ।[5] यह सम्यग्दर्शन सभी प्रकार के दु:खों का नाश करने वाला है, अत: इसमें प्रमादी मत बनो ।[6]

जिन-प्रणीत सम्यग्दर्शनरूपी रत्न को अन्तरङ्ग भावों से धारण करो क्योंकि यह गुणरूपी रत्नत्रय में सार है तथा मोक्ष मन्दिर की प्रथम सीढ़ी है ।[7] जिस प्रकार भाग्यशाली मनुष्य कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि रत्न और रसायन को प्राप्त कर मनो-वाञ्छित उत्तम सुखों को प्राप्त होता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भी उत्तम सुखों को प्राप्त होता है ।[8] सम्यग्दर्शन को जब यह जीव प्राप्त हो जाता है तब परम सुखी हो जाता है और जब तक उसे प्राप्त नहीं करता है तब तक दु:खी बना रहता है ।[9] यह सम्यग्दर्शन रूपी महारत्न समस्त लोक का आभूषण है और मोक्षपर्यंत आत्मा को कल्याण देने में दक्ष है ।[10]

"अन्य गुणों से हीन भी सम्यग्दृष्टि सर्वमान्य है" क्या बिना शान (कसौटी) पर चढ़ा रत्न शोभा को प्राप्त नहीं होता है ? अपितु अवश्य होता है ।[11] सम्यग्दर्शन सब रत्नों में महारत्न है। सब योगों से उत्तम योग है और सब ऋद्धियों में महाऋद्धि है। अधिक क्या कहें सम्यक्त्व सब सिद्धियों को करने वाला है। सम्यक्त्वी जीव देवेन्द्र तथा नरेन्द्र (चक्रवर्ती) आदि से भी वन्दनीय होता है और व्रत रहित होता हुआ भी नाना प्रकार के उत्तम स्वर्ग-सुखों को प्राप्त करता हैं ।[12]

---

5. *जह ण वि लहदि हु लक्खं रहिओ कंडस्स वेज्जय-विहीणो*
तह ण वि लक्खदि लक्खं अण्णाणी मोक्खमग्गस्स ॥ बो.पा.**21**

6. *मा कासि तं पमादं सम्मत्ते सव्वदुक्खणासयरे ।* भ.आ.**734**

7. *एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण ।*
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढममोक्खस्स ॥ द.पा.**21**

8. *कामदुहिं कप्पतरु चिंतारयणं रसायणं य परमं ।*
लद्धो भुंजदि सोक्खं जहच्छिदं जाण तह सम्मं ॥ र.सा.**164**

9. *सम्मद्दंसणसुद्धं जाव दु लभदे हि ताव सुही ।*
सम्मद्दंसणसुद्धं जाव ण लभदे हि ताव दुही ॥ र.सा. **153**

10. *सद्दर्शनमहारत्नं विश्वलोकैकभूषणम् ।*
मुक्तिपर्यन्तकल्याणदानदक्षं प्रकीर्तितम् ॥ *ज्ञा.* 6/53

11. *मान्य: सद्दर्शनी ज्ञानी हीनोऽप्यपरसदगुणै: ।*
वरं रत्नमनिष्पन्नं शोभां किं नार्घ्यमर्हति ॥ आ. सा. **2/68**

12. *रयणाण महारयणं सव्वं जोयाण उत्तमं जोयं ॥*
रिद्धीण महारिद्धी सम्मत्तं सव्वसिद्धियरं ॥
सम्मत्तगुणपहाणो देविंद-णरिंद-वंदिओ होदि ।
चत्त-वओ वि य पावदि सग्गसुहं उत्तमं विविहं ॥ का.आ.**325,326**

तीनों कालों और तीनों जगत् में जीवों का सम्यक्त्व के समान कुछ भी कल्याणकारी नहीं हैं और मिथ्यात्व के समान अन्य कोई अकल्याणकारी नही है ।[13] शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव कान्ति, प्रताप, विद्या, वीर्य, यशोवृद्धि, विजय तथा वैभव से युक्त होते हैं । वे उच्चकुलीन, मोक्षसाधक तथा मनुष्यों में शिरोमणि होते हैं ।[14] यह अपार संसार समुद्ध से तारने वाला है और इसमें विपदाओं को स्थान नही है । ऐसे इस सम्यग्दर्शन को जिसने अपने वश में किया है, उस पुरुष ने कोई अलभ्य सम्पदा ही वश में की है जो दूसरों को अलभ्य है ।[15]

सम्यक्त्व से ज्ञान सम्यक् होता है तथा उन दोनों (सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान) से सर्व पदार्थों या तत्त्वों की उपलब्धि होती हैं । पदार्थों की उपलब्धि होने पर श्रेय तथा अश्रेय का ज्ञान होता हैं । श्रेय व अश्रेय को जानकर पुरुष दु:शील (गलत स्वभावों) को छोड़कर सम्यक् स्वभाव-युक्त होकर अभ्युदय एवं तीर्थंकर आदि पदों को प्राप्त होता हुआ निर्वाण को प्राप्त करता हैं ।[16] दर्शन से शुद्ध ही वास्तव में शुद्ध है, क्योंकि दर्शन-शुद्ध ही निर्वाण को प्राप्त करते है दर्शन से विहीन पुरुष इष्ट-लाभ अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करते हैं ।[17]

सम्यग्दर्शन-सहित चाण्डाल को भी गणधरादि भस्म से ढ़की हुई चिनगारी के समान 'देव' कहते है ।[18] सर्वज्ञ देव ने अपने शिष्यों को 'दर्शन, धर्म का मूल है' ऐसा उपदेश

---

13. *न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्, त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।*
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं, नान्यत्तनूभृताम् ।। र. क. श्रा. **34**

14. *ओजस्तेजोविद्यावीर्य्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथा:।*
महाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूता: ।। र. क. श्रा. **36**

15. *अपारसंसारसमुद्रतारकं, वशीकृतं येन सुदर्शनं परम् ।*
वशीकृतास्तेन जनेन संपद:परैरलभ्या विपदामनास्पदम् ।। अ.ग.श्रा. **2/83**

16. *सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी ।*
उवलद्धपयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि ।।
सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि ।
सीलफलेणाब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं ।। द.पा. **15/16**

17. *दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं ।*
दंसणविहीणपुरिसो न लहइ तं इच्छियं लाहं ।। मो. पा. **39**

18. *सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम् ।*
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ।। र. क. श्रा.**28**

दिया है ।[19] दर्शन भ्रष्ट ही वास्तव में भ्रष्ट हैं, क्योंकि दर्शन भ्रष्ट को निर्वाण नही होता है। चारित्र भ्रष्ट को मोक्ष हो जाता है पर दर्शन भ्रष्ट को नहीं होता। दर्शन भ्रष्ट ही भ्रष्ट हैं चारित्र भ्रष्ट वास्तव में भ्रष्ट नही होता, क्योंकि जिसका सम्यक्त्व नहीं छूटा है ऐसा चारित्र भ्रष्ट संसार में पतन नही करता अपितु पुनः उत्थान कर लेता है ।[20]

जो जीव मुहूर्त काल-पर्यंत भी सम्यग्दर्शन को प्राप्त करके उसे छोड़ देते हैं, वे भी इस संसार में अनन्तानन्त काल-पर्यंत नहीं रहते ।[21] अर्थात् उनका अधिक से अधिक अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल मात्र ही संसार शेष रहता हैं, इससे अधिक नहीं। जो सम्यग्दर्शन से पतित नहीं होते उनको संसार में अधिकतम सात या आठ भवों का ग्रहण होता हैं और जघन्य से दो-तीन भवों का। इतने भवों के पश्चात् उनके संसार का उच्छेद हो जाता है। जो सम्यक्त्व से च्युत हो गये हैं उनके लिए कोई नियम नहीं है ।[22]

वस्तुतः सम्यग्दर्शन से रहित जीव चलते-फिरते शव (मुर्दा) के समान हैं ।[23 A]

*****

---

19. *दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं ।* **द.पा. 2**

20. *दंसणभट्ठो भट्ठो दंसणभट्टस्य णत्थि णिव्वाणं ।*
सिज्झंति चरियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झंति ।।
दंसण भट्ठो भट्ठो ण हु भट्ठो होइ चरणभट्ठो हु ।
दंसणममुयत्तस्स हु परिवडणं णत्थि संसारे ।। **भ.आ.737-738**

21. *लद्धूण य सम्मत्तं मुहुत्तकालमवि जे परिवडंति ।*
तेसिमणंताणंता ण भवदि संसारवासद्धा ।। **भ.आ.52**

22. *अप्रतिपतितसम्यग्दर्शनानां परीतविषयः सप्ताष्टानि भवग्रहणानि उत्कर्षेण वर्तन्ते, जघन्येन द्वित्राणि अनुबन्ध्योच्छिद्यन्ते । प्रतिपतितसम्यक्त्वानां तु भाज्यम् ।* **रा. वा. 4/25**

23.(A) *जीवविमुक्को सवओ दंसणमुक्को य होइ चल-सवओ ।* **भा.पा.141**

द्वितीय अध्याय

मिथ्यादर्शन

मिथ्यादर्शन को समझे बिना सम्यग्दर्शन को समझना अधूरा समझना है। अत: सर्वप्रथम हम मिथ्यादर्शन का कथन करते है।

मिथ्यादर्शन का लक्षण

मिथ्यात्व कर्म के उदय से जो तत्त्वों का अश्रद्धान रूप परिणाम होता है वह मिथ्यादर्शन है।[23B] जीवादि पदार्थों का श्रद्धान न करना मिथ्यादर्शन है।[24] भगवान अर्हंत परमेश्वर के मार्ग से प्रतिकूल मार्गाभ्यास में 'यह सन्मार्ग है।' ऐसा श्रद्धान मिथ्यादर्शन है।[25] अदेव को देव, अगुरु को गुरु और अधर्म को धर्म मानना मिथ्यात्व है, क्योंकि वह विपरीत रूप है।[26]

विपरीत अभिनिवेश के कारण शुद्ध जीवादि पदार्थों के विषय में जो उपयोग - विकार रूप विपरीत श्रद्धान होता है उसे मिथ्यात्व कहते हैं।[27] वस्तुत: निज आत्मा के सम्यक् श्रद्धान रूप से विमुखता मिथ्यादर्शन है।[28]

अन्तरङ्ग में वीतराग रूप निजात्म तत्त्व के अनुभव रूप रुचि-विषय में विपरीत अभिप्राय को उत्पन्न कराने वाले बाहरी विषयों में परकीय शुद्ध आत्म-तत्त्वादि समस्त द्रव्यों में जो विपरीत अभिप्राय को उत्पन्न कराने वाला है उसे मिथ्यात्व कहते हैं।[29]

23.B *मिथ्यादर्शनकर्मण उदयातत्त्वार्थाश्रद्धानपरिणामो मिथ्यादर्शनम्* स.सि.**2/6**

24. *तं मिच्छत्तं जमसद्दहणं तच्चाणं होइ अत्थाणं ।।* भ.आ.**55**

25. *भगवदर्हत्परमेश्वरमार्गप्रतिकूलमार्गाभासमार्गश्रद्धानं मिथ्यादर्शनम्। नि.सा.,*ता.वृ.**91**

26. *अदेवे देवबुद्धिर्या गुरुधीरगुरौ च या ।*
अधर्मे धर्मबुद्धिश्च मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात् ।। स्या.मं.,टी.**32/341/23**

27. *विपरीताभिनिवेशोपयोगविकाररूपं शुद्धजीवादिपदार्थविषये*
विपरीतश्रद्धानं मिथ्यात्वमिति । स.सा.,ता.वृ.**88**

28. *स्वात्मश्रद्धान......विमुखत्वमेव मिथ्यादर्शनम्.....।* नि.सा.,ता.वृ.**91**

29. *अभ्यन्तरे वीतरागनिजात्मतत्त्वानुभूतिरुचिविषये विपरीताभिनिवेशजनकं*
बहिर्विषये तु परकीयशुद्धात्मतत्त्वप्रभृतिसमस्तद्रव्येषु विपरीताभिनिवेशोत्पादकं
च मिथ्यात्वं भण्यते । द्र. सं. टी. **30**

मिथ्यादर्शन कर्म के उदय से वशीभूत जीव मिथ्यादृष्टि कहलाता है, इस कारण से उसे तत्त्वार्थों का श्रद्धान नहीं होता है ।[30] तीन मूढ़ता आदि पच्चीस दोषों से रहित वीतराग सर्वज्ञ के द्वारा कहे गये निजात्मा आदि षट्द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व और नव पदार्थों में नय-विभाग पूर्वक जिसके श्रद्धान नही है वह जीव मिथ्यादृष्टि होता है ।[31]

परद्रव्य में रत साधु मिथ्यादृष्टि है ।[32] शरीर आदि पर्यायों में रत जीव मिथ्यादृष्टि है ।[33] मिथ्यादृष्टि जीव को पर-समय कहते है ।[34] कर्मोदय-जनित मनुष्यादि रूप पर्यायों में निरत रहने के कारण पर-समय जीव मिथ्यादृष्टि होते है ।[35]

मिथ्यादृष्टि जीव के भेद-प्रभेद

सामान्य से मिथ्यात्व एक प्रकार का है तथा विशेष की अपेक्षा अनेक प्रकार का हैं । सामान्यतया मिथ्यादृष्टि जीव हिताहित की परीक्षा से रहित और हिताहित के परीक्षक की अपेक्षा दो प्रकार के हैं । संज्ञी-पर्याप्तक को छोड़कर सभी एकेन्द्रियादि जीव हिताहित की परीक्षा से रहित है तथा संज्ञी-पर्याप्तक दोनों प्रकार के होते हैं ।[36]

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख जीव को भी मिथ्यादृष्टि जीव कहते है । यह जीव सातिशय मिथ्यादृष्टि कहलाता है ।[37] निसर्ग और अधिगम के भेद से मिथ्यात्व दो प्रकार का हैं ।[38]

---

30. *मिथ्यादर्शनकर्मोदयेन वशीकृतो जीवो मिथ्यादृष्टिरित्यधीयते । यत कृतं तत्त्वार्थानामश्रद्धानं .... ।* रा.वा. **9/1**
31. *निजपरमात्मप्रभृति-षट्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थेषु मूढत्रयादिपञ्च-विंशतिमलरहितं वीतरागसर्वज्ञप्रणीतं नयविभागेन यस्य श्रद्धानं नास्ति स मिथ्यादृष्टिर्भवति ।* द्र.सं.,टी. **13**
32. *जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठि हवेइ सो साहू ।* प.प्र. **1/77**
33. *पज्जयरत्तउ जीवडउ मिच्छादिट्ठि हवेइ ।* प.प्र.**1/77**
34. *परसमयो मिच्छत्तं ।* ध. **1/1,1,1/82/7**
35. *कर्मोदयजनितपरपर्यायनिरतत्वात्परसमया मिथ्यादृष्टयो भण्यन्ते ।* प्र.सा.,ता.वृ.**2/2/94**
36. *ते सर्वे समासेन द्विधा व्यवतिष्ठन्ते-हिताहितपरीक्षाविरहिताःपरीक्षकाश्चेति, तत्रैकेन्द्रियादयः सर्वे संज्ञिपर्याप्तकवर्जिताः हिताहितपरीक्षाविरहिताः ..* रा.वा. **9/1**
37. *प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखसातिशयमिथ्यादृष्टेर्भणितानि ।* ल.सा.जी.प्र.टी.**220/273/9**
38. *मिथ्यादर्शनं द्विविधम्नैसर्गिकं परोपदेशपूर्वकं च ।* स.सि. **8/1**

संशय, अभिगृहीत और अनभिगृहीत के भेद से तीन प्रकार का हैं ।[39] क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानी व वैनयिक के भेद से चार प्रकार का हैं ।[40] एकान्त, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञान के भेद से पाँच प्रकार का हैं ।[41] परिणामों की दृष्टि से असंख्यात और अनुभाग की दृष्टि से अनन्त प्रकार का भी हैं ।[42] ये सभी भेद मिथ्यादृष्टि जीवों के हैं ।

मिथ्यादृष्टि जीव की पहचान

जो मुनि देहादि में अनुरक्त हैं, विषय-कषाय से संयुक्त हैं, आत्म-स्वभाव में सुप्त हैं, वे सम्यक्त्व-रहित अर्थात् मिथ्यादृष्टि है ।[43] मिथ्यात्व कर्म का अनुभव करने वाला जीव विपरीत श्रद्धानी होता है । जैसे कि ज्वर-युक्त मनुष्य को मधुर रस अच्छा नहीं लगता उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव को धर्म नहीं रुचता हैं ।[44] वह जिनोपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान नहीं करता किन्तु उपदष्टि या अनुपदिष्ट पदार्थों के अयथार्थ स्वरूप का श्रद्धान करता है ।[45] जो दोष-सहित देव को, जीव-हिंसा आदि से युक्त धर्म को और परिग्रह से युक्त गुरु को मानता है वह मिथ्यादृष्टि है ।[46]

मिथ्यादृष्टि के भावों की विशेषतायें

अज्ञानमय भाव से अज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होता है, इसलिए अज्ञानियों के भाव अज्ञानमय ही होते हैं ।[47] अज्ञानी जो कि सर्व द्रव्यों के प्रति रागी है वह कर्मों के मध्य रहता

---

39. *संसइयमभिग्गहियं अणभिग्गहियं च तं तिविहं ।* भ.आ.**55**
40. *परोपदेशनिमित्तं चतुर्विधम्-क्रियाक्रियावाद्यज्ञानिकवैनयिकविकल्पात् ।* स.सि.**8/1**
41. *एयंतविणयविवरियसंसयमण्णाणमिदि हवे पंच ।* बा.अ. **48**
42. *परिणामविकल्पात् असंख्येयाश्च भवन्ति, अनन्ताश्च अनुभागभेदात् ।* रा.वा.**8/1**
43. *देहादिसु अणुरत्ता, विसयासत्ता कसायसंजुत्ता ।*
    आदसहावे सुत्ता, ते साहु सम्मपरिचत्ता ॥ र.सा. **100**
44. *मिच्छत्तं देवंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि ।*
    *ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो ॥ गो.जी.*17
45. *मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।*
    सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं व अणुवइट्ठं ॥ गो.जी.**18**
46. *दोससहियं पि देवं जीवहिंसाइ संजुदं धम्मं ।*
    गंथासत्तं च गुरुं जो मण्णदि सो हु कुदिट्ठी ॥ का.अ.**318**
47. *अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायए भावो ।*
    जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ॥ स.सा.**129**

हुआ कर्म-रज से लिप्त होता है। जैसे-लोहा कीचड़ के बीच रहता हुआ जंग से लिप्त हो जाता है।[48]

प्रश्न. - मिथ्यादृष्टि जीवों के ज्ञान को अज्ञानपना कैसे कहा ?

उत्तर - क्योंकि, उनका ज्ञान, ज्ञान का कार्य नहीं करता है।

प्रश्न. - ज्ञान का कार्य क्या है ?

उत्तर - सम्यक् जाने हुए पदार्थ का श्रद्धान करना, ज्ञान का कार्य है। इस प्रकार का ज्ञान मिथ्यादृष्टि जीवों में नहीं पाया जाता है। इसलिए उनके ज्ञान को अज्ञान कहा है अन्यथा जीव के अभाव का प्रसंग आ जायेगा।

प्रश्न.- दया धर्म को जानने वाले मिथ्यादृष्टि जीवों में श्रद्धान पाया जाने से क्या वे ज्ञानी कहे जायेंगे ?

उत्तर - नहीं, क्योंकि दया-धर्म के ज्ञाताओं में भी आत्मा, आगम और पदार्थ के प्रति यथार्थ श्रद्धान के होने का विरोध है। ज्ञान का कार्य नहीं होने पर ज्ञान में अज्ञान का व्यवहार लोक से अप्रसिद्ध भी नहीं है क्योंकि पुत्र के कार्य को नहीं करने वाले पुत्र में भी लोक में 'अपुत्र' कहने का व्यवहार देखा जाता है।[49]

मिथ्यात्व कर्म के उदय से वस्तु के प्रतिभासित होने पर भी संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय की निवृत्ति नहीं होने से मिथ्यादृष्टियों को अज्ञानी कहा है।[50]

जीवों को जब सुख या दु:ख रूप भाव का वेदन होता है तब मिथ्यादृष्टि को रागादि भावों के सद्भाव से बंध का निमित्त होकर वह भावनिर्जरा को प्राप्त होता हुआ भी

---

48. *अण्णाणी पुणरत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।*
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा लोहं॥ स.सा. **219**

49. *कधं मिच्छादिट्ठिणाणस्स अण्णाणत्तं। णाणकज्जाकरणादो। किं णाण-कज्जं ? णादत्थसद्दहणं। ण ते मिच्छादिट्ठिम्हि अत्थि। तदो णाणमेव अण्णाणं, अण्णहा जीवविणासप्पसंगा। अवगयदवधम्मणाहसु मिच्छादिट्ठिम्हि सद्दहणमुवलंभए चे ण, अत्तागमपयत्थसद्दहणविरहियस्स दवधम्मणाहसु जहट्ठसद्दहणविरोहा। ण च एस ववहारो लोगे अप्पसिद्धो, पुत्तकज्जमकुणंते पुत्ते वि लोगे अपुत्तववहारदंसणादो।* ध.**5/45/224**

50. *मिथ्यात्वोदयात्पतिभासितेऽपि वस्तुनि संशयविपर्ययानध्यवसायानिवृत्तितस्तेषा-मज्ञानिनोक्तः।* ध. **1/142**

निर्जरित न होकर बंध को ही प्राप्त होता है ।[51]

मिथ्यात्व से जिस प्रकार अज्ञान और अविरति भाव होते हैं, उसी प्रकार ज्ञेयभूत वस्तु की प्रतीति का आश्रय करके मिथ्यादृष्टि जीव जिस समय तत्त्व विचार करता है, उस समय उसके लिए सुनय भी दुर्नय हो जाते हैं और प्रमाण भी दु:प्रमाण हो जाते हैं ।[52]

शरीरधारी जीवों को मिथ्यात्व के समान अन्य कुछ अकल्याणकारी नहीं हैं ।[53] मिथ्यादृष्टि और सासादन-सम्यग्दृष्टि दोनों पाप-जीव हैं ।[54] जिन भगवान् के द्वारा देखा गया एक भी अक्षर जिसे नहीं रुचता है वह मरे तो, कुयोनियों में डूबता है तब जिसे सब ही नहीं रुचता उसके सम्बन्ध में तो कहना ही क्या ?[55]

प्रश्न.- जिस प्रकार पदार्थों को सम्यग्दृष्टि जानता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी जानता है । ऐसी परिस्थिति में सम्यग्दृष्टि का ज्ञान सम्यग्ज्ञान और मिथ्यादृष्टि का ज्ञान मिथ्याज्ञान क्यों हैं ?

उत्तर - इस प्रश्न का उत्तर तत्त्वार्थसूत्र में बहुत सुन्दर दिया है-'सदसतोरविशेषाद्य-दृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्[क] जैसे कोई उन्मत्त (शराबी या पागल) व्यक्ति अपनी इच्छानुसार जैसा-तैसा जानने के कारण सत् और असत् पदार्थों में भेद नहीं कर पाता है और वह कभी अपनी पत्नी को पत्नी के रुप में तो कभी माता के रूप में जानता है वैसा ही मिथ्यादृष्टि का ज्ञान होता है । अत: उसे सम्यक् नहीं कहा जाता है । मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये तीन ज्ञान इसीलिए मिथ्या भी होते हैं ।[ख] इनके ज्ञानों में मिथ्याज्ञान का कारण है मिथ्यादर्शन का उदय (संसर्ग) रहना । जैसे-मीठा भी दूध कडुवी तूंबड़ी के संपर्क के कारण कडुआ लगता है वैसे ही मिथ्यात्व के संपर्क के कारण ज्ञान, मिथ्या होता है ।

*****

---

51. *स तु यदा विद्यते तदा मिथ्यादृष्टे रागादिभावानां सद्भावेन बन्धनिमित्तं भूत्वा निर्जीर्यमाणोऽप्यनिर्जीर्णः सन् बन्ध एव स्यात् ।* स.सा./आ.टी.**194**
52. *मिथ्यात्वात्... यथैवाज्ञानमविरतिभावश्च भवति तथा सुनयो दुर्नयो भवति प्रमाणं दुःप्रमाणं च भवति । कदा भवति ? तत्त्वविचारकाले । किं कृत्वा ? प्रतीत्याश्रित्य। किमाश्रित्य ? ज्ञेयभूतं जीवादिवस्त्विति ।* पं.का./ता.वृ.**43** क्षेपक गाथा **6/87/28**
53. *अश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ।* र.क. श्रा. **34**
54. *मिच्छाइट्ठी पावा णंताणंताय सासणगुणा वि ।* गो.जी. **623**
55. *एक्कं पि अक्खरं जो अरोचमाणो मरेज्ज जिणदिट्ठं ।*
सो वि कुजोणिणिवुड्डो किं पुण सव्वं अरोचंतो ॥ भ.आ.**61**

क. *तत्वार्थसूत्र,* **1.32**

ख. *तत्वार्थसूत्र,* **1.31**

तृतीय अध्याय

सम्यग्दर्शन का लक्षण, उत्पत्ति एवं भेद-प्रभेद

सम्यग्दर्शन का व्युत्पत्तिपरक विश्लेषण तथा कुछ प्रश्नोत्तर

आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी (देवनन्दी जी) ने सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में व्याकरण और आगम के परिप्रेक्ष्य में 'सम्यग्दर्शन' का निम्न विश्लेषण प्रस्तुत किया हैं –

सम्यक् - यह शब्द अव्युत्पन्न (रौढ़िक) और व्युत्पन्न (व्याकरणसिद्ध) है ।

जब यह व्याकरण से सिद्ध किया जाता है तब 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'अञ्च' धातु से 'क्विप' प्रत्यय करने पर 'सम्यक्' शब्द बनता है । संस्कृत में इसकी व्युत्पत्ति 'समञ्चति इति सम्यक्' इस प्रकार होती है । प्रकृत में इसका अर्थ 'प्रशंसा' है । पदार्थों के यथार्थ ज्ञान-विषयक श्रद्धान का संग्रह करने के लिए दर्शन के पहले 'सम्यक्' विशेषण दिया है ।[56]

दर्शन - यद्यपि 'सम्यक्' शब्द में कोई विशेष ऊहापोह दार्शनिक विद्वानों में नही है किन्तु 'दर्शन' में है । जैसे –

प्रश्न.- 'दर्शन' शब्द 'दृशि' धातु से बना है जिसका अर्थ आलोक अर्थात् देखना है । अतः इससे श्रद्धान रूप अर्थ का ज्ञान नहीं हो सकता है ?

उत्तर - धातु के अनेक अर्थ होते हैं, अतः 'दृशि' धातु का श्रद्धान रूप अर्थ करने में कोई दोष नहीं है ।

प्रश्न. - यहाँ 'दृशि' धातु का प्रसिद्ध अर्थ क्यों छोड़ दिया है ?

उत्तर - मोक्षमार्ग का प्रकरण होने से तत्वार्थों का श्रद्धान रूप जो आत्मा का परिणाम होता है वह मोक्ष का साधन बन जाता है, और यह भव्यों के ही पाया जाता है । किन्तु 'आलोक' चक्षु आदि के निमित्त से होता है, जो साधारण रूप से सब संसारी जीवों में पाया जाता है । अतः उसे मोक्षमार्ग में उपयोगी मानना योग्य नहीं है ।[57]

---

56. *सम्यगित्यव्युत्पन्नः शब्दो व्युत्पन्नो वा । अञ्चतेः क्विपौ समञ्चतीति सम्यगिति । अस्यार्थः प्रशंसा । ..... पदार्थानां याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसंग्रहार्थं दर्शनस्य सम्यग्विशेषणम् ।* स.सि. 1/1

57. *दृशेरालोकार्थत्वात् श्रद्धानार्थगतिर्नोपपद्यते ? धातूनामनेकार्थत्वाददोषः । प्रसिद्धार्थ-त्यागः कुत इति चेत् ? मोक्षमार्गप्रकरणात् । तत्वार्थश्रद्धानं ह्यात्मपरिणामो मोक्षसाधनं युज्यते भव्यजीवविषयत्वात् । आलोकस्तु चक्षुरादिनिमित्तः सर्वसंसारिजीवसाधारणत्वान्न मोक्षमार्गो युक्तः ।* स.सि.

प्रश्न. - दर्शन को अर्थात् सत्तावलोकन मात्र (दर्शनोपयोग) को 'तत्त्वार्थ-श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' इस सूत्र में जो तत्त्वार्थ-श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन कहा गया है सो नहीं कहना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि 'तत्त्वार्थ-श्रद्धान' तो विकल्प रूप है और यह दर्शनोपयोग निर्विकल्प रूप ह ?[58]

उत्तर - सत्तामात्रावलोकन भी कथञ्चित् इष्ट है क्योंकि मिथ्यादर्शन में दर्शनावरण कर्म के उदय से होने वाले अदर्शन का अन्तर्भाव हो जाता है और दर्शन सामान्य का आवरण करने वाला होने के कारण यहाँ ही निद्रा-निद्रा आदि का भी अन्तर्भाव होता है।

प्रश्न.- तत्त्वार्थ के अश्रद्धान को मिथ्यादर्शन कहा गया है ?

उत्तर - यह ठीक ही कहा गया है क्योंकि सामान्य निर्देश में विशेष का अन्तर्भाव हो जाता है तथा दूसरी बात यह है कि अदर्शन नाम अप्रतिपत्ति का है और वही मिथ्यादर्शन है अर्थात् स्वपर का यथार्थ अवलोकन न होना मिथ्यादर्शन है।[59]

प्रश्न.- 'तत्त्वार्थ श्रद्धान' या 'तत्त्वार्थ-रुचि' रूप सम्यग्दर्शन से मोक्षमार्ग होता है। ऐसा कहने में दोष नहीं है परंतु जो देखता है या निर्विकल्प रूप से अवलोकन करता है ऐसा सत्तावलोकन रूप दर्शन जो आपने कहा है वह मोक्षमार्ग कैसे हो सकता है ? यदि होता है ऐसा मानो तो यह सत्तावलोकन रूप दर्शन तो अभव्यों के भी होता है उनको भी मोक्ष होना चाहिए और इस प्रकार आगम के साथ विरोध आता है ?

उत्तर - उनके निर्विकल्प सत्तावलोकन रूप दर्शन बाह्य विषयों में होता है किन्तु आभ्यन्तर शुद्धात्म तत्त्व के विषय में नहीं।[60]

प्रश्न.- निजात्मा के दर्शन या अवलोकन को आपने दर्शन कहा है और वह

---

58. *नेदमेव तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं सम्यग्दर्शनं वक्तव्यम् । कस्मादिति चेत् तत्र श्रद्धानं विकल्परूपमिदं तु निर्विकल्पं यतः ।* **द्र.सं.टी. 43**

59. *मिथ्यादर्शने अदर्शनस्यावरोधो भवति । निद्रानिद्रादीनामपि दर्शनसामान्यावरणत्वात्तत्रैवान्तर्भावः । ननु च तत्त्वार्थाश्रद्धानं मिथ्यादर्शनमित्युक्तम्, सत्यमुक्तम् सामान्य निर्देशे विशेषान्तर्भावात् सोऽप्येको विशेषः । अयमपरो विशेषः । अदर्शनमप्रतिपत्तिर्मिथ्यादर्शनमिति ।* **रा.वा. 2/6**

60. *तत्त्वार्थश्रद्धानरुचिरूपं सम्यग्दर्शनं मोक्षमार्गो भवति, नास्ति दोषः पश्यतिनिर्विकल्परूपेणावलोकयति इत्येवं यदुक्तं तत्सत्तावलोकदर्शनं कथं मोक्षमार्गो भवति, यदि भवति चेत्तर्हि तत्सत्तावलोकदर्शनमभव्यानामपि विद्यते, तेषामपि मोक्षो भवति, स चागमविरोधः इति । परिहारमाह । तेषां निर्विकल्पसत्ता-वलोकदर्शनं बहिर्विषये विद्यते, न चाभ्यन्तरशुद्धात्मतत्त्वविषये ।* **प.प्र.टी.2/13**

सत्तावलोकन रूप दर्शन मिथ्यादृष्टियों के भी होता है। उनको भी मोक्ष होना चाहिए ?

उत्तर - चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल के भेद से दर्शन चार प्रकार का हैं। इन चारों में से यहाँ मानस् अचक्षु दर्शन आत्म-ग्राहक होता है और वहाँ मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय और क्षयोपशम-जनित तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण वाले सम्यग्दर्शन का अभाव होने के कारण 'शुद्धात्म तत्त्व ही उपादेय है' ऐसे श्रद्धान का अभाव है। इसलिए वह मोक्ष उन मिथ्यादृष्टियों के नहीं होता है।[61]

प्रश्न.- स्वसंवेदन से रहित आत्मा की तो कभी भी उपलब्धि नहीं होती ?

उत्तर - नहीं, क्योंकि बहिरङ्ग पदार्थों की उपयोग रूप अवस्था में अन्तरङ्ग पदार्थ का उपयोग नहीं पाया जाता है।[62]

विशेषार्थ :- उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि आत्मा में अनन्त गुण पाये जाते हैं। उनमें से एक 'दर्शन' नामक गुण है जो महासत्ता को विषय करता है। इस गुण का आवारक (ढ़ाकने वाला) कर्म दर्शनावरण है। इसके चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन आदि नव भेद हैं। दूसरा गुण है 'श्रद्धा' इसे भी प्राय: आचार्यों ने 'दर्शन' नाम से अनुगृहीत किया है। इस गुण का आवारक कर्म दर्शन मोहनीय है और इसके मिथ्यादर्शन आदि तीन भेद हैं। अत: दोनों कर्म अलग अलग हैं, और दोनों के विषय भी अलग-अलग ही हैं, एक नहीं, क्योंकि दर्शनावरण कर्म के क्षय या क्षयोपशम से, क्षायिक या क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है। इसी प्रकार दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय या क्षयोपशम से चक्षु आदि दर्शन नहीं होते, क्योंकि इन दोनों में पारस्परिक अन्योन्याभाव है। फिर भी कुछ लोग दोनों को एक मान लेते हैं जिससे वे आगम के सही अर्थ तक नहीं पहुँच पाते हैं और भटक जाते हैं तथा दूसरों को भी भटकाने में हेतु बन जाते हैं। यहाँ ज्ञातव्य है कि दर्शनावरण के क्षय होने पर दर्शनमोहनीय का क्षय अवश्यम्भावी है परंतु दर्शनमोहनीय के क्षय होने दर्शनावरण का क्षय भजनीय (हो भी सकता है, नहीं भी) है।

---

61. *निजात्मा तस्य दर्शनमवलोकनं दर्शनमिति व्याख्यातं भवद्भिरिदं तु सत्तावलोकदर्शनं मिथ्यादृष्टिनामप्यस्ति तेषामपि मोक्षो भवतु । परिहारमाह-चक्षुरचक्षुरवधिकेवलभेदेन चतुर्धा दर्शनम् । अत्र चतुष्टयमध्ये मानसमचक्षुदर्शनमात्मग्राहकं भवति तच्च मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृत्युपशमक्षयोपशमक्षयजनिततत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणसम्यक्त्वाभावात् शुद्धात्मतत्त्वमेवोपादेयमिति श्रद्धानाभावे सति तेषां मिथ्यादृष्टीनां न भवत्येवेति भावार्थः ।*
प.प्र.टी. 2/34

62. *अस्वसंविद्रूपो न कदाचिदप्यात्मोपलभ्यत इति चेन्न, तस्य बहिरङ्गोपयोगावस्थायामन्तरङ्गोपयोगानुपलम्भात् ।* ध. 1/1,1/133/384/4

साथ ही यह भी ध्यान रखें, जो परमात्मप्रकाश में यह कहा है कि "मानस अचक्षुदर्शन आत्मग्राहक होता है ।" इसका तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शन आदि गुण चक्षु और अवधि- दर्शन द्वारा भी ग्राह्य नहीं हो सकते हैं । अपितु इनका दर्शन छद्मस्थों को मानस् प्रत्यक्ष रूप अचक्षु- दर्शन से और केवलियों को केवलदर्शन द्वारा ही प्रत्यक्ष हो सकता है । इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि मानस् अचक्षुदर्शन मिथ्यादृष्टियों को होता नहीं है, अपितु संज्ञी मिथ्यादृष्टियों को होता है पर उनका वह पारमार्थिकता के विषय में शून्य होता है बाह्य-विषयों में जागृत रहता है। ऐसा सर्वत्र तात्पर्य समझना चाहिए ।

सम्यग्दर्शन का लक्षण

अठारह दोष - रहित देव में, हिंसादि-रहित धर्म में तथा निर्ग्रन्थ-प्रवचन में अर्थात् मोक्षमार्ग एवम् उसके गुरु, इनमें श्रद्धा होना सम्यग्दर्शन हैं ।[63]

मिथ्यात्वोदयजनित, विपरीताभिनिवेश-रहित, पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य, आस्रवादि सात पदार्थ अथवा जीवादि नव पदार्थ, इनके श्रद्धान करने को सम्यग्दर्शन कहते हैं ।[64]

ज्ञेय और ज्ञात इन दोनों की यथारुप प्रतीति सम्यग्दर्शन का लक्षण है ।[65] विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावरूप निज परमात्मा में रुचि होना सम्यग्दर्शन हैं ।[66]

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में कारण

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में प्रमुख दो कारण (निमित) हैं - बाह्य और आभ्यन्तर ।

कारण - जो कार्य जिस हेतु के होने पर ही हो और न होने पर न हो उसे कारण कहते हैं । सभी कार्यों का कारण होता है, ऐसा न्याय है । अर्थात् कार्य सदैव कारण पूर्वक ही होते हैं, कारण के बिना कार्य नहीं होते हैं । किन्तु कारण सदैव कार्य को उत्पन्न करने वाले ही हों ऐसा भी संभव नहीं है । क्योंकि 'घट' को न करने वाले कुम्भकार के लिए भी 'कुम्भकार'

---

63. *हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे ।*
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्त ।। **मो.पा.90**

64. *मिथ्यात्वोदयजनितविपरीताभिनिवेशरहितं श्रद्धानम् । केषां सम्बन्धि ? पञ्चास्तिकाय-षड्द्रव्यविकल्परूपंजीवाजीवद्वयं जीवपुद्गलसंयोगपरिणामोत्पन्नास्रवादिपदार्थसप्तकं चेत्युक्तलक्षणानां भावानां जीवादिनवपदार्थानाम् । इदं तु नवपदार्थविषयभूतं व्यवहारसम्यक्त्वम् ।* पं.का./ता.वृ.**107**

65. *ज्ञेयज्ञातृतत्त्वतथाप्रतीतिलक्षणेन सम्यग्दर्शनपर्यायेण ।* प्र.सा./ता.वृ. **242**

66. *विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजपरमात्मनि यद्रुचिरूपं सम्यग्दर्शनम् ।*
स.सा.,ता.वृ. **2/8/10**

शब्द का व्यवहार किया जाता है । अथवा काष्ठादि की अपेक्षा रखने वाली अग्नि, धूम को उत्पन्न करे ही ऐसा नियम नहीं हैं क्योंकि अंगार आदि में ऐसा नहीं पाया जाता है । कारण, कार्य को उत्पन्न करते हीं नहीं है, ऐसा भी नियम नहीं हैं क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता है । कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति मानना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा होने पर तो सर्वदा सभी कार्यों की उत्पत्ति अथवा अनुत्पत्ति का प्रसंग प्राप्त होगा । तात्पर्य यह है कि कारण के बिना कोई भी कार्य होता नहीं है । किन्तु सभी कारणों से कोई कार्य हो ही जाये ऐसा भी नियम नही है । क्योंकि कारण बहुत प्रकार के होते हैं । साधन को कारण कहते है और जिस निमित्त से वस्तु उत्पन्न हो उसे साधन कहते है ।[67] साधन, हेतु, प्रत्यय, कारण, निमित्त ये सभी एकार्थवाची शब्द हैं ।[68]

बाह्य कारण - जो बाह्य द्रव्य के आलम्बन से होता है और जो दूसरों के देखने में आता है वह बाह्य निमित्त या कारण कहलाता है ।

आभ्यन्तर कारण - जो अन्तरङ्ग सामग्री के आलम्बन से होता है तथा जो सामान्यत: दूसरों के देखने में नहीं आता है उसे आभ्यन्तर निमित्त कहते है ।

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के बाह्य-कारण

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में बाह्य-निमित्त जिनसूत्र या जिनसूत्र के जानने वाले पुरुष हैं ।[69] देशनालब्धि और काललब्धि आदि बहिरङ्ग कारण हैं ।[70] तीर्थंकर, केवली, श्रमण, भवस्मरण, शास्त्र, देवमहिमा, आदि बहुत प्रकार के बाह्य हेतु जानने चाहिए ।[71]

दर्शनमोह के उपशमादि में द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव हेतु होते हैं ।

द्रव्य - जिनबिंब आदि द्रव्य हैं ।

क्षेत्र - समवशरण आदि क्षेत्र हैं ।

काल - अर्द्धपुद्गल-परावर्तन आदि काल-विशेष हैं ।

भाव - अध:प्रवृत्तिकरण आदि भाव हैं ।[72]

---

67. *साधनमुत्पत्तिनिमित्तम् ।* स.सि. 1/7
68. *प्रत्यय: कारणं निमित्तमित्यनर्थान्तरम् ।* स.सि. 1/21
69. *सम्मत्तस्स णिमित्तं, जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा ।* नि.सा. 53
70. *देशनाकाललब्ध्यादिबाह्यकारणसंपदि ।* म.पु. 9/116
71. *तित्थयरकेवलिसमणभवसुमरणसत्थदेवमहिमादि ।*
    इच्चेवमाइ बहुगा बाहिरहेउ मुणेयव्वा ।। न.च.वृ. 316
72. *दर्शनमोहस्यापि संपन्नो जिनेन्द्रबिम्बादिद्रव्यं, समवसरणादिक्षेत्रं कालश्चार्धपुद्गलपरिवर्तनविशेषादिर्भावश्चाध: प्रवृत्तिकरणादिरिति निश्चीयते । तदभावे तदुपशमादिप्रतिपत्ते:, अन्यथा तदभावात् ।* श्लो.वा.3/1/3/11/82/22

जातिस्मरण, जिनबिम्बदर्शन, धर्मश्रवण, जिनमहिमादर्शन, देवर्द्धिदर्शन व वेदनानुभव ये भी सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में बाह्य कारण हैं ।[73]

चारों गतियों में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के बाह्य-कारण

नरकगति में - प्रथम तीन नरकों में धर्मश्रवण, जातिस्मरण और वेदना ये तीन बाह्य कारण हैं । चौथे से सातवें नरकों में जातिस्मरण और वेदना ये दो बाह्य कारण हैं ।

तिर्यंच गति में - जिनबिम्बदर्शन, धर्मश्रवण और जातिस्मरण ये तीन बाह्य कारण हैं।

मनुष्य गति में - जिनबिम्बदर्शन, धर्मश्रवण और जातिस्मरण ये तीन बाह्य कारण हैं।

देवगति में - भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवों में तथा प्रथम से बारह स्वर्ग तक के देवों में जिनबिम्बदर्शन, धर्मश्रवण, जातिस्मरण और देवर्द्धिदर्शन ये चार बाह्य कारण हैं। तेरहवें से सोलहवें स्वर्ग तक - जिनबिम्बदर्शन, धर्मश्रवण और जातिस्मरण ये तीन बाह्य कारण हैं; नवग्रैवेयक में धर्मश्रवण और जातिस्मरण ये दो बाह्य कारण हैं । अनुदिश व अनुत्तरवासी देवों में - ये सभी जन्म से ही सम्यग्दृष्टि होते हैं अर्थात् यहाँ केवल सम्यग्दृष्टि जीव ही जन्म लेते हैं ।[74]

प्रश्न - जिनबिम्बदर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण कैसे है ?

उत्तर - जिनबिम्ब के दर्शन से निधत्त और निकाचित रूप मिथ्यात्वादि कर्मकलाप का भी क्षय देखा जाता हैं ।[75]

ऋषियों व तीर्थक्षेत्रों के दर्शन का पृथक् रूप में निर्देश क्यों नहीं ?

प्रश्न.- 'लब्धिसम्पन्न ऋषियों का दर्शन भी तो प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का

---

73. *'आदि'शब्देन जातिस्मरणादि परिगृह्यते ।* स.सि. **2/3**

74. *बाह्यं नारकाणां प्राक्चतुर्थ्याः सम्यग्दर्शनस्य साधनं केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्म-श्रवणं केषाञ्चिद्वेदनाभिभवः । चतुर्थीमारभ्य आसप्तम्या नारकाणां जातिस्मरणं वेदनाभिभवश्च । तिरश्चां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनबिम्ब-दर्शनम् । मनुष्याणामपि तथैव । देवानां केषाञ्चिज्जातिस्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणं केषाञ्चिज्जिनमहिमादर्शनं केषाञ्चिद्देवर्द्धिदर्शनम् । एव प्रागानतात् । आनतप्राणतारणा-च्युतदेवानां देवर्द्धिदर्शनं मुक्त्वान्यत्त्रितयमप्यस्ति । नैवग्रैवेयकवासिनां केषाञ्चिज्जाति-स्मरणं केषाञ्चिद्धर्मश्रवणम् । अनुदिशानुत्तरविमानवासिनामियं कल्पना न संभवति, प्रागेव गृहीतसम्यक्त्वानां तत्रोत्पत्तेः ।* स.सि. **1/7**

75. *कधं जिणबिंबदंसणं पढमसम्मत्तुप्पत्तीए कारणं ? जिणबिंबदंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खयदंसणादो ।* ध. **6.427**

कारण होता है, इस कारण को यहाँ पृथक् रूप से क्यों नहीं कहा ?

उत्तर - क्योंकि, लब्धि-सम्पन्न ऋषियों के दर्शन का भी जिनबिम्बदर्शन में ही अन्त-र्भाव हो जाता है। इसी तरह ऊर्जयन्त पर्वत तथा चंपापुर व पावापुर आदि तीर्थों के दर्शन भी जिनबिम्बदर्शन के भीतर ही ग्रहण कर लेना चाहिए, क्योंकि, उक्त प्रदेशवर्ती जिनबिम्बों के दर्शन तथा जिनभगवान् के निर्वाणगमन के कथन के बिना प्रथम सम्यक्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता हैं।[76]

देवों के देवर्द्धिदर्शन और जातिस्मरण में तथा नारकियों के जातिस्मरण और वेदनोद्भव कारणों में अन्तर

प्रश्न.- देवर्द्धिदर्शन का जातिस्मरण में समावेश क्यों नहीं होता ?

उत्तर - क्योंकि, अपनी अणिमादिक ऋद्धियों को देखकर जब देवों को ये विचार उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियाँ जिनभगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म के अनुष्ठान से उत्पन्न हुई है, तब प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति जातिस्मरण निमित्तक होती है। किन्तु जब सौधर्मेन्द्रादिक देवों की महाऋद्धियों को देखकर यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियाँ सम्यग्दर्शन से संयुक्त संयम के फल से प्राप्त हुई है, किन्तु मैं सम्यक्त्व से रहित द्रव्यसंयम के फल से वाहनादिक नीच देवों में उत्पन्न हुआ हूँ, तब प्रथमसम्यक्त्व का ग्रहण देवऋद्धिदर्शन निमित्तक होता है। इससे ये दोनों कारण एक नहीं हो सकते तथा जातिस्मरण उत्पन्न होने के प्रथम समय से लगाकर अन्तर्मुहूर्तकाल के भीतर ही होता है। किन्तु देवर्द्धिदर्शन, उत्पन्न होने के समय से अन्तर्मुहूर्तकाल के पश्चात् ही होता है। इसलिए भी उन दोनों कारणों में एकत्व नहीं है। यही अर्थ नारकियों के जातिस्मरण और वेदनाभिभवरूप कारणों में विवेक कर लेना चाहिए।[77]

---

76. *लद्धिसंपण्णरिसिदंसणं पि पढमसम्मत्तुप्पत्तीए कारणं होदि, तमेत्थ पुध किण्ण भण्णदे ? ण, एदस्स वि जिणबिंबदंसणो। अंतब्भावादो। उज्जंतचंपापावाणयरादिदंसणं पि एदेण घेत्तव्वं। कुदो ? तत्थत्तणजिणबिंबदंसण जिणणिव्वुइगमणकहणेहि विणा पढमसम्मत्तगहणाभावा।* **ध. 6/430**

77. *देविद्धिदंसणं जाइस्सरणम्मि किण्ण पविसदि ? ण पविसदि, अप्पणो अणिमादि-रिद्धिओ दट्ठूण एदाओरिद्धिओ जिणपण्णत्तधम्माणुट्ठाणादो जादाओ त्ति पढमसम्मत्त-पडिवज्जणं जाइस्सरणणिमित्तं। सोहम्मिंदादिदेवाणं महिद्धीओ दट्ठूण एदाओ सम्मद्द-संणसंजुत्तसंजमफलेण जादाओ, अह पुण सम्मत्तविरहिद दव्वसंजमफलेण वाहणा-दिणीचदेवेसु उप्पणो त्ति णादूण पढमसम्मत्तग्गहणं देविद्धिदंसणणिबंधणं। तेण ण दोण्हमेयत्तमिदि। किं च जाइस्सरणमुप्पण्णपढमसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तकालाब्भंतरे चेव होदि। देविद्धिदंसणं पुण कालांतरे चेव होदि, तेण ण दोण्हमेयत्तं। एसो अत्थो णेरइयाणं जाइस्सरणवेयणाभिभवणाणं पि वत्तव्वो।* **ध. 6.433**

कारणों के स्वामित्व-संबंधी शङ्का - समाधान

(क) नरकगति में जातिस्मरण व वेदना-संबंधी

प्रश्न.- चूँकि सभी नारकी जीव विभंगज्ञान के द्वारा एक, दो या तीन आदि भव जानते हैं, इसलिए सभी के जातिस्मरण होता। अतएव सभी नारकीय जीव सम्यग्दृष्टि होना चाहिए ?

उत्तर - यह कोई दोष नहीं हैं, क्योंकि सामान्य रूप से भवस्मरण के द्वारा सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती। किन्तु धर्म-बुद्धि से पूर्वभव में किये गये अनुष्ठानों की विफलता के दर्शन से ही प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति रूप कारणत्व इष्ट है, जिससे पूर्वोक्त दोष प्राप्त नहीं होता और इस प्रकार की बुद्धि सब नारकी जीवों के नहीं होती क्योंकि तीव्र मिथ्यात्व के उदय के वशीभूत नारकी जीवों के पूर्व भवों का स्मरण होते हुए भी उक्त प्रकार के उपयोग का अभाव है। इस प्रकार जातिस्मरण प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण है।[78]

प्रश्न.- वेदना का अनुभव सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि, यह अनुभव तो सब नारकियों के साधारण होता है। यदि वह अनुभव सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण हो तो सब नारकी जीव सम्यग्दृष्टि होंगे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा पाया ही नहीं जाता ?

उत्तर - वेदना सामान्य, सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण नहीं है, किन्तु जिन जीवों के ऐसा उपयोग होता हैं, कि अमुक वेदना अमुक मिथ्यात्व के कारण या अमुक असंयम से उत्पन्न हुई है, उन्हीं जीवों की वेदना सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण होती हैं, अन्य जीवों की वेदना नरकों में सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण नहीं होती। क्योंकि उनमें उक्त प्रकार के उपयोग का अभाव होता हैं।[79]

(ख) नरकों में धर्म-श्रवण सम्बन्धी

---

78. *सव्वे णेरइया विभंगण्णाणेण एक्क-दो-तिण्णि आदिभवग्गहणाणि जेण जाणंति तेण सव्वेसिं जाइस्सरणमत्थि त्ति सव्वणेरइएहि सम्मादिट्ठीहि होदव्वमिदि ? ण एस दोसो, भवसामण्णसरणेण सम्मत्तुप्पत्तीए अणब्भुवगमादो। किंतु धम्मबुद्धीए पुव्वभवम्हि कयाणुट्ठाणाणं विहबलत्तदंसणस्स पढमसम्मुत्तप्पत्तीए कारणत्तमिच्छिज्जदे, तेण ण पुव्वुत्तदोसो ढुक्कदि त्ति। ण च एवं विहा बुद्धी सव्वणेरइयाणं होदि, तिव्वमिच्छत्तोदएण ओट्टद्धणेरइयाणं जाणंताणं पि एवंविह उवजोगाभावादो। तम्हा जाइस्सरणं पढमसम्मत्तुप्पत्तीए कारणं।* **ध. 6.422**

79. *...वेयणाणुहवणं सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं ण होदि, सव्वणेरइयाणं साहारणत्तादो। जइ होइ, तो सव्वे णेरइया सम्माइट्ठिणो होंति। ण चेवं, अणुवलंभा ? परिहारो वुच्चदे ण वेयणासामण्णं सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं। किंतु जेसिमेसा वेयणा एदम्हादो मिच्छत्तादो इमादो असंजमादो (वा) उप्पण्णेत्ति उवजोगो जादो, तेसिं चेव वेयणा सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं णावरजीवाणं वेयणा, तत्थ एवंविह उवजोगाभावा।* **ध. 6/422**

प्रश्न.- नारकी जीवों में धर्म-श्रवण किस प्रकार संभव है, क्योंकि वहाँ तो ऋषियों के गमन का अभाव है ?

उत्तर - अपने पूर्वभव-सम्बन्धी जीवों को धर्म उत्पन्न कराने में प्रवृत्त और समस्त बाधाओं से रहित सम्यग्दृष्टि देवों का नरकों (तीसरे नरक तक) में गमन देखा जाता है। तीसरी से नीचे की चार पृथ्वियों में धर्मश्रवण के द्वारा प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि वहाँ देवों के गमन का अभाव है।

प्रश्न.- वहाँ ही विद्यमान सम्यग्दृष्टियों से धर्मश्रवण के द्वारा प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति क्यों नहीं होती ?

उत्तर - ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं कि नहीं होती, क्योंकि भवसम्बन्ध से या पूर्व वैर के संबंध से परस्पर विरोधी हुए नारकी जीवों के अनुग्राह्य-अनुग्राहक भाव उत्पन्न होना असंभव है।[80]

(ग) मनुष्यों में जिनमहिमा-दर्शन के अभाव -संबंधी

प्रश्न.- जिनमहिमा को देखकर भी कितने ही मनुष्य प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं, इसलिए तीन के स्थान पर चार कारणों से मनुष्य प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं, ऐसा कहना चाहिए ?

उत्तर - यह कोई दोष नहीं क्योंकि, जिनमहिमादर्शन का जिनबिम्बदर्शन में अन्तर्भाव हो जाता है अथवा मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के आकाश में गमन करने की शक्ति न होने से उनके चतुर्विध देवनिकायों के द्वारा किये जाने वाले नन्दीश्वरद्वीपवर्ती जिनेन्द्र-प्रतिमाओं के महामहोत्सव का देखना सम्भव नहीं है, इसलिए उनके जिनमहिमादर्शन रूप कारण का अभाव है। किन्तु मेरुपर्वत पर किये जाने वाले जिनेन्द्र महोत्सवों को मिथ्यादृष्टि

---

80. *कधं तेसिं धम्मसुण्णं संभवदि, तत्थ रिसीणं गमणाभावा ? ण, सम्माइट्ठिदेवाणं पुव्वभवसंबंधीणं धम्मपदुप्पायणे वावदाणं सयलबाधाविरहियाणं तत्थ गमणदंसणादो। धम्मसवणादो पढमसम्मत्तस्स तत्थ उप्पत्ती णत्थि, देवाणं तत्थ गमणाभावा। तत्थतणसम्माइट्ठिधम्मसवणादो पढमसम्मत्तस्स उप्पत्ती किण्ण होदि त्ति वुत्ते, ण होदि, तेसिं भवसंबंधेण पुव्वबेरसंबंधेण वा परोप्परविरुद्धाणं अणुगेज्झाणुग्गाहय-भावाणमसंभवादो।* ध. **6 /422, 424**

विद्याधर देखते हैं, इसलिए उपर्युक्त अर्थ नहीं कहना चाहिए, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, अतएव पूर्वोक्त अर्थ ही ग्रहण करना योग्य हैं।[81]

(घ) देवों में जिनबिम्बदर्शन क्यों नहीं

प्रश्न.- क्योंकि जिनबिम्बदर्शन को प्रथम सम्यक्त्व के कारण रूप से क्यों नहीं कहा ?

उत्तर - क्योंकि जिनबिम्बदर्शन का जिनमहिमादर्शन में ही अन्तर्भाव हो जाता है, कारण जिनबिम्ब के बिना जिनमहिमा की उत्पत्ति बनती नही है।

प्रश्न.- स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक और परिनिष्क्रमणरूप जिनमहिमाएँ, जिनबिम्ब के बिना की गई देखी जाती है, इसलिए जिनमहिमा-दर्शन में जिनबिम्बदर्शन का अविनाभावीपना नही है ?

उत्तर - ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक ओर परिनिष्क्रमणरूप जिनमहिमाओं में भी भावि जिनबिम्ब का दर्शन पाया जाता है अथवा इन महिमाओं में उत्पन्न होने वाला प्रथम सम्यक्त्व जिनबिम्बदर्शन निमित्तक नहीं है। जिनगुणश्रवण-निमित्तक है।[82]

प्रश्न.- आनतादि चार स्वर्गो में देव-ऋद्धिदर्शन सहित चार कारण क्यों नही कहे ?

उत्तर - आनत आदि चार कल्पों में महर्द्धि से संयुक्त ऊपर के देवों का आगमन नहीं होता, इसलिए वहाँ महर्द्धिदर्शनरूप प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण नहीं पाया जाता और उन्हीं कल्पों में स्थित देवों के महर्द्धि-दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का

---

81. *जिणमहिमं दट्ठूण वि केइं पढमसम्मत्तं पडिवज्जंता अत्थि तेण चदुहि कारणेहि पढमसम्मत्तं पडिवज्जंति त्ति वत्तव्वं ? ण, एस दोसो, एदस्स जिणबिंबदंसणे अंतब्भावादो। अधवा मणुसम्मिच्छाइट्ठीणं गयणगमणविरहियाणं चउव्विहदेवणिकाएहि णंदीसरजिणवरपडिमाणं कीरमाणमहामहिमावलोयण संभवाभावा। मेरुजिणवर-महिमाओ विज्जाधरमिच्छादिट्ठिणो पेच्छंति त्ति एस अत्थो ण वत्तव्वओ त्ति केइं भणंति। तेण पुव्वुत्तो चेव अत्थो घेत्तव्वो।* ध. **6/430**

82. *जिणबिंबदंसणं पढमसम्मत्तस्स कारणत्तेण एत्थ किण्ण उत्तं?ण एस दोसो, जिणमहिमा-दंसणम्मि तस्य अंतब्भावादो, जिणबिंबेण विणा जिणमहिमाए अणुववत्तीदो। सग्गोसरणजम्माहिसेयपरिणिक्खमणजिणमहिमाओ जिणबिंबेण विणा कीरमाणीओ दिस्संति त्ति जिण-महिमाए जिणबिंबदंसणस्स अविणाभावो णत्थि त्ति, ण, संकणिज्जं, तत्थ वि भाविजिणबिंबस्स दंसणुवलंभा। अधवा एदासु महिमासु उप्पज्जमाण पढम-सम्मत्तं ण जिणबिंबदंसणणिमित्तं, किंतु जिणगुणसवणणिमित्तमिदि।* ध.**6/432**

निमित्त हो नहीं सकता, क्योंकि उसी ऋद्धि को बार-बार देखने से विस्मय नहीं होता अथवा उक्त कल्पों में शुक्ललेश्या के सद्भाव के कारण महर्द्धि के दर्शन से उन्हें कोई संक्लेशभाव उत्पन्न नहीं होते। धर्मोपदेश सुनकर जो जातिस्मरण होता है और देवर्द्धि को देखकर जो जातिस्मरण होता है, ये दोनों ही जातिस्मरण यद्यपि प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति के निमित्त होते हैं, तथापि उनसे उत्पन्न सम्यक्त्व वहाँ (आनत आदि में) जातिस्मरण निमित्तक नहीं माना जाता है, क्योंकि यहाँ देवर्द्धि के दर्शन व धर्मोपदेश के श्रवण के पश्चात् ही उत्पन्न हुए जातिस्मरण का निमित्त प्राप्त हुआ है। अतएव यहाँ धर्मोपदेश-श्रवण और देवर्द्धिदर्शन को ही निमित्त मानना चाहिए।[83]

(ङ) नवग्रैवेयकों में जिनमहिमा व देवद्धि-दर्शन क्यों नहीं ?

नवग्रैवेयकों में महर्द्धिदर्शन नहीं है, क्योंकि यहाँ (ग्रैवेयक देवों में) ऊपर के देवों के आगमन का अभाव है। यहाँ जिनमहिमादर्शन भी नहीं है, क्योंकि ग्रैवेयक विमानवासी देव नन्दीश्वर आदि के महोत्सव देखने नहीं आते।

प्रश्न.- ग्रैवेयक देव अपने विमानों में रहते हुए ही अवधिज्ञान से जिनमहिमाओं को देखते तो है, अतएव जिनमहिमा का दर्शन भी अनेक सम्यक्त्व की उत्पत्ति में निमित्त होता है, ऐसा क्यों नहीं कहा ?

उत्तर - क्योंकि ग्रैवेयक विमानवासी देव वीतरागी होते हैं, अतएव जिनमहिमा के दर्शन से उन्हें विस्मय उत्पन्न नहीं होता।[84]

(च) नवग्रैवेयकों में धर्मश्रवण कैसे ?

प्रश्न.- ग्रैवेयक विमानवासी देवों के धर्म-श्रवण किस प्रकार संभव होता है ?

---

83. *देविड्ढिदंसणेण चत्तारि कारणाणि किण्ण वुत्ताणि ? तत्थ महिड्ढिसंजुत्तुवरिमदेवाण-मागमाभावा। ण तत्थट्ठिददेवाणं महिड्ढिदंसणं पढमसम्मत्तुप्पत्तीए णिमित्तं, भूयो दंसणेण तत्थ विम्हयाभावा, सुक्कलेस्साए महिड्ढिदंसणेण संकिलेसाभावादो वा। सोऊण जं जाइस्सरणं, देविड्ढिं दट्ठूण जं च जाइस्सरणं, एदाणि दो वि जदि वि पढमसम्मत्तुप्पत्तीए णिमित्तं होंति, तो वि तं सम्मत्तं जाइस्सरणणिमित्तमिदि एत्थ ण घेप्पदि, देविड्ढिदंसणसुणणपच्छायदजाइस्सरणणिमित्तादो। किंतु सुणणदेविड्ढिदंसण-णिमित्तमिदि घेत्तव्वं।* **ध. 6/435**

84. *एत्थ महिड्ढिदंसणं णत्थि उवरिमदेवाणमागमाभावा। जिणमहिमादंसणं पि णत्थि, णंदीसरादिमहिमाणं तेसिमागमणाभावा। ओहिणाणेण तत्थट्ठिया चेव जिणमहिमाओ पेच्छंति त्ति जिणमहिमादंसणं तेसिं सम्मत्तुप्पत्तीए णिमित्तमिदि किण्ण उच्चदे ? ण, तेसिं वीयरायाणं जिणमहिमादंसणेण विस्मयाभावा।* **ध.6/436**

उत्तर - क्योंकि उनमें परस्पर संलाप होने पर अहमिन्द्रत्व से विरोध नहीं होता।[85]

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के आभ्यन्तर (अन्तरङ्ग) कारण

सम्यग्दर्शन के अन्तरङ्ग हेतु दर्शनमोह के उपशम, क्षय व क्षयोपशम हैं।[86]

उपशम - आत्मा में कर्म की निज शक्ति का कारणवश प्रकट न होना उपशम है। जैसे - कतक आदि द्रव्य के संबंध से जल में कीचड़ का उपशम हो जाता है।[87]

क्षय - प्रतिपक्षी कर्मों के अभाव का नाम क्षय है।[88]

क्षयोपशम -फलदान-समर्थ रूप से कर्मों का उद्‌भव तथा अनुद्‌भव सो क्षयोपशम है।[89] वर्तमान काल में सर्वघाति स्पर्द्धकों का उदयाभावी क्षय होने से और आगामी काल की अपेक्षा उन्हीं का सद्‌वस्थारूप उपशम होने से, देशघाती स्पर्द्धकों का उदय रहते हुए क्षायोपशमिक भाव होता है।[90]

सर्वघाति स्पर्द्धक अनन्तगुणे हीन होकर और देशघाति स्पर्द्धकों में परिणत होकर उदय में आते हैं। उन सर्वघाती स्पर्द्धकों का अनन्तगुण हीनत्व ही क्षय कहलाता है और उनका देशघाती स्पर्द्धकों के रूप से अवस्थान होना उपशम है। उन्हीं क्षय और उपशम से संयुक्त उदय का नाम क्षयोपशम कहलाता है।[91]

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के प्रकार

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के दो प्रकार हैं - 1. निसर्गज और 2. अधिगमज.

---

85. *कधं तेसिं धम्मसुणणसंभवो ? ण, तेसिं अण्णोण्णसल्लावे संते अहमिंदत्तस्स विरोहाभावा।* ध. 6/436
86. *अभ्यन्तरं दर्शनमोहस्योपशमः क्षयः क्षयोपशमो वा।* स.सि.1/7
87. *आत्मनि कर्मणः स्वशक्तेः कारणवशादनुद्‌भूतिरुपशमः यथा कतकादिद्रव्य-संबंधादम्भसि पङ्कस्य उपशमः।* स.सि.2/1
88. *प्रतिपक्षकर्मणां पुनरुत्पत्त्यभावेन नाशः क्षयः।* गो.जी./जी.प्र.टी.8
89. *कर्मणां फलदानसमर्थतया.....उद्‌भूत्यनुद्‌भूती क्षयोपशमः।* पं.का./ता.वृ.56
90. *सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमाद्देशघातिस्पर्द्धकानामुदये क्षायोपशमिको भावो भवति।* स.सि. 2/5
91. *सव्वघादिफद्दयाणि अणंतगुणहीणाणि होदूण देसघादिफद्दयत्तणेण परिणमिय उदयमागच्छंति, तेसिमणंतगुणहीणत्तं खओ णाम। देसघादिफद्दयसरूवेणवट्ठाणमुवसमो। ते हि खओवसमेहिं संजुत्तोदओ खओवसमो णाम।* ध. 7/92

(अ) निसर्गज सम्यग्दर्शन : जो बाह्य उपदेश के बिना होता है, वह नैसर्गिक (निसर्गज) सम्यग्दर्शन है ।[92] निकट सिद्धि वाले भव्य जीव के दर्शन मोहनीय कर्म के उपशम आदि अन्तरङ्ग हेतुओं के विद्यमान रहने पर और परोपदेश को छोड़कर शेष (ऋद्धि-दर्शन, जिनबिम्ब-दर्शन, वेदना आदि) बहिरङ्ग कारणों से पैदा हुए तत्त्वार्थ-ज्ञान के अनन्तर उत्पन्न हुआ तत्त्वार्थ-श्रद्धान निसर्गज समझना चाहिए ।[93]

(ब) अधिगमज सम्यग्दर्शन :- जो बाह्य उपदेश पूर्वक जीवादि पदार्थों के ज्ञान के निमित्त से होता है वह अधिगमज सम्यग्दर्शन है ।[94] वह श्रद्धान प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाण, द्रव्यार्थिक - पर्यायार्थिक नय, नाम-स्थापना - द्रव्य- भाव-निक्षेप, व्याकरणादिक, निरुक्ति, निर्देश - स्वामित्व आदि अनुयोग इत्यादि के द्वारा विशेष निर्णय रूप है । इस लक्षण वाला अधिगमज श्रद्धान है ।[95]

सभी सम्यग्दर्शन साक्षात् या परंपरा से अधिगम ही होते है ।

निसर्ग का अर्थ स्वभाव नहीं है जिससे कि उस स्वभाव से ही उत्पन्न हो रहा सम्यग्दर्शन नहीं जाने हुए तत्त्वार्थ को विषय करने की अपेक्षा से रसायन के समान सम्यग्दर्शन ही न बन सके, अर्थात् रसायन के तत्त्वों को न समझ करके क्रिया करने वाले पुरुष के जैसे रसायन की सिद्धि नही हो पाती है वैसे ही तत्त्वार्थों के ज्ञान के बिना केवल क्रिया करने से सम्यग्दर्शन की सिद्धि नहीं होती ।[96]

जाति-स्मरण और जिनबिम्ब-दर्शन के बिना उत्पन्न होने वाला नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्व असम्भव है ।[97] लम्बे समय पहले से तत्त्वों की प्राप्ति 'देशना-लब्धि' है । नारकादि में उपदेश देने वाला नहीं है, वहाँ पूर्वभव में धारण किये गये तत्त्वार्थ के संस्कारबल से

---

92. *यद्बाह्योपदेशादृते प्रादुर्भवति तन्नैसर्गिकम् ।* स.सि.**1/3**

93. *तत्र प्रत्यासन्ननिष्ठस्य भव्यस्य दर्शनमोहोपशमादौ सत्यन्तरङ्गे हेतौ बहिरङ्गादपरोपदेशा-तत्त्वार्थज्ञानात्....प्रजायमानं तत्त्वार्थश्रद्धानं निसर्गजम्... प्रत्येतव्यम् ।*
श्लो.वा.**1/3/13/85**

94. *यत्परोपदेशपूर्वकं जीवाद्यधिगमनिमित्तं तदुत्तरम् । स.सि. 1/3*

95. *तच्छ्रद्धानं...अधिगमेन प्रमाणनयनिक्षेपनिरुक्त्यनुयोगद्वारैः विशेषनिर्णयलक्षणेन भवति ।* गो.जी./जी.प्र.टी.**561**

96. *न हि निसर्गः स्वभावो येन ततः सम्यग्दर्शनमुत्पद्यमानमनुपलब्धतत्त्वार्थगोचरतया रसायनवन्नोपपद्यते ।* श्लो.वा.**1/3/4/67**

97. *जाइस्सरण-जिणबिंबदंसणेहि विणा उप्पज्जमाणणइसग्गियपढमसम्मत्तस्स असंभवादो।* ध. **6/431**

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति जानना चाहिए ।[98]

निसर्गज तथा अधिगमज सम्यग्दर्शन में अन्तर

प्रश्न.- निसर्गज सम्यग्दर्शन में पदार्थों का अवबोध है कि नहीं, यदि है तो वह भी अधिगमज ही भया, और यदि नही है तो तत्त्वज्ञान बिना सम्यक्त्व नाम कैसे पाया ?

उत्तर - दोनों प्रकार के सम्यग्दर्शन में अन्तरङ्ग कारण दर्शनमोह का उपशम, क्षय, क्षयोपशम की समानता है । उसके होने में यदि आचार्यादिक के उपदेशपूर्वक तत्त्वज्ञान होंवे तो अधिगमज है । उपदेश बिना होने पर निसर्गज है । यह दोनों में अंतर है ।[99] जिनका मोह, वेदना अथवा अभिभवादिकों में से किसी भी निमित्त को पाकर दूर हो गया है, सम्यग्दर्शन को घातने वाली सात प्रकृतियों का बाह्य निमित्त-वश जिनके उपशम, क्षय या क्षयोपशम हो चुका है, उनमें से कोई जीव तो ऐसे होते हैं कि जिनको बिना किसी चर्चा-विशेष के (बिना प्रयास के) ही तत्त्व में रुचि उत्पन्न हो जाती है और कोई ऐसे होते हैं कि जो कुछ अधिक प्रयास करने पर ही बाह्य निमित्त के अनुसार मोह के दूर हो जाने पर तत्त्व-रुचि को प्राप्त होते हैं । अर्थात् अल्प और अधिक प्रयास का ही निसर्गज और अधिगमज सम्यग्दर्शन में अन्तर है ।[100]

सम्यग्दर्शन के भेद-प्रभेद

सम्यग्दर्शन सामान्य से एक है । उत्पत्ति की अपेक्षा निसर्गज और अधिगमज के भेद से दो प्रकार का हैं । औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक के भेद से तीन प्रकार का हैं ।[101] स्वरूप की अपेक्षा निश्चय-व्यवहार[102] तथा विषय की अपेक्षा सराग-वीतराग के भेद

---

98. *चिरातीतकाले उपदेशितपदार्थधारणलाभो वास देशनालब्धिर्भवति । तु शब्देनोपदेशकररहितेषु नारकादिभवेषु पूर्वभवश्रुतधारिततत्त्वार्थस्य संस्कारबलात् सम्यग्दर्शनप्राप्तिर्भवति, इति सूच्यते ।* ल.सा./जी.प्र.टी.**6/4**

99. *निसर्गजेऽर्थावबोधः स्यान्न वा ? यदि स्यात्तदा तदप्यधिगमजमेव । यदि न स्यात्तदानवगततत्त्वः श्रद्दधीतेति ? तन्न । उभयत्रान्तरङ्गकारणे दर्शनमोहस्योपशमे क्षये क्षयोपशमे वा समाने च सत्याचार्याद्युपदेशेन जातमधिगमजं तद्विना जातं नैसर्गिकमिति भेदस्य सद्भावात् ।* गो.क.जी.प्र.टी.**550**

100. *केनापि हेतुना मोहवैधुर्यात्कोऽपि रोचते ।*
तत्त्व हि चर्चानायस्तः कोऽपि च क्षोदखिन्नधीः ।। अन.ध. **2/49**

101. *सामान्यादेक सम्यग्दर्शनम् । द्वितयं निसर्गजाधिगमजभेदात् । त्रितयं औपशमिक-क्षायिकक्षायोपशमिकभेदात् ।* स./स. 1/7

102. *णिच्छयववहारसरूवदो भेयं ।* र. सा. **4**

से भी दो प्रकार का हैं ।[103] आज्ञा, मार्ग, उपदेश, सूत्र, बीज, संक्षेप, विस्तार, अर्थ, अवगाढ़ और परमावगाढ़ के भेद से दस प्रकार का हैं ।[104] शब्दों की अपेक्षा संख्यात प्रकार का हैं । श्रद्धान करने वालों की अपेक्षा असंख्यात प्रकार का हैं और श्रद्धान करने योग्य पदार्थों व अध्यवसायों की अपेक्षा अनन्त प्रकार का हैं ।[105]

इस तरह सम्यग्दर्शन धर्म का मूलाधार है । इसके अभाव में ज्ञान और चारित्र आधारहीन हैं । यह भी सत्य है कि ज्ञान और चारित्र में वृद्धि होने पर सम्यग्दर्शन में भी वृद्धि होती है परंतु ज्ञान और चारित्र में सम्यक्पना तभी संभव है जब सम्यग्दर्शन हो । वस्तुतः सम्यग्दर्शन की प्राप्ति को 'बोधिलाभ' कहा जा सकता है । निश्चय से यह यद्यपि एक ही प्रकार का है परंतु अपेक्षाओं के भेद से (व्यवहार नय से) इसके विविध प्रकार के भेद किये जाते हैं । ये सभी भेद पर सापेक्ष हैं ।

---

103. *तद् द्विविधं सरागवीतरागविषयभेदात् ।* स.सि. **1/2**

104. *दशधा-आज्ञामार्गोपदेशसूत्रबीजसंक्षेपविस्तारार्थावगाढपरमावगाढरुचिभेदात् ।* रा.वा. **3./36**

105. *...संख्येया विकल्पाः शब्दतः । असंख्येया अनन्ताश्च भवन्ति श्रद्धातृश्रद्धातव्य-भेदात् ।* स.सि. **1/7**

चतुर्थ अध्याय

औपशमिक, क्षायोपशमिक एवं क्षायिक सम्यग्दर्शन

औपशमिक या उपशम सम्यक्त्व का लक्षण

जिस प्रकार पङ्कादि-जनित कालुष्य के प्रशान्त होने पर जल निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार दर्शनमोह के उदय से उपशान्त होने पर जो सत्यार्थ श्रद्धान उत्पन्न होता है उसे उपशम सम्यग्दर्शन कहते हैं ।[106] कीचड़ के नीचे बैठ जाने से निर्मल जल के समान दर्शनमोहनीय के उपशम से पदार्थों का जो निर्मल श्रद्धान होता है, वह उपशम सम्यग्दर्शन हैं ।[107]

उपशम सम्यक्त्व के भेद

उपशम सम्यक्त्व दो प्रकार का हैं - प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व ।[108]

प्रथमोपशम सम्यक्त्व

लक्षण - मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से छूटने पर जो उपशम सम्यक्त्व होता है उसका नाम प्रथमोपशम सम्यक्त्व है ।[109]

प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन का पात्र

चारों गतियों का भव्य, संज्ञी, पर्याप्तक, गर्भज, विशुद्ध, साकार उपयोगी, जागृत, प्रशस्त लेश्या वाला और लब्धि संयुक्त जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है ।[110] इसका विशेष विवरण निम्न प्रकार है ।

दर्शनमोहनीय कर्म को उपशमाता हुआ जीव किस गति आदि में उपशमाता है ? यह जीव चारों गतियों में उपशमाता है । चारों ही गतियों में उपशमाता हुआ पंचेन्द्रियों में उपशमाता है, एकेन्द्रियों व विकलेन्द्रियों में नहीं । पंचेन्द्रियों में उपशमाता हुआ संज्ञियों में

---

106. *दंसणमोहस्सुदए उपसंते सच्चभावसद्दहणं ।*
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णकलुसं जहा तोयं ।। **पं.सं/प्रा.1/166**

107. *दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थ सद्दहणं ।*
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णमलपंकतोयसमं **।।216।।** **ध. 1/144**

108. *तत्राद्यं प्रथमद्वितीयभेदाद् द्वेधा ।* **गो.क./जी.प्र.टी. 550**

109. *चतुर्गति-मिथ्यादृष्टिः संज्ञी पूर्णो गर्भजो विशुद्धः साकारः प्रथमोपशमं गृहणाति ।* **ल.सा.टी. 2**

110. *चदुगइभव्वो सण्णी पज्जतो सुज्झगो य सागारो ।*
जागारो सल्लेसो सलद्धिगो सम्ममुवगमइ ।। **गो.जी. 652**

उपशमाता है, असंज्ञियों में नहीं । संज्ञियों में उपशमाता हुआ गर्भोपक्रान्तिकों में उपशमाता है, सम्मूच्छिनों में नही । गर्भोपक्रन्तिकी में उपशमाता हुआ पर्याप्रकों में उपशमाता है, अपर्याप्रकों में नहीं । पर्याप्रकों में उपशमाता हुआ संख्यातवर्ष की आयु वाले जीवों में भी उपशमाता है और असंख्यात वर्ष की आयु वाले जीवों में भी उपशमाता है । नरक गति में सातों ही पृथिवियों में पर्याप्रक ही उपशमाता है । तिर्यञ्चगति में सर्व ही द्वीप-समुद्रों में से पञ्चेन्द्रिय संज्ञी गर्भज पर्याप्रक ही उपशमाते है । मनुष्यगति में अढ़ाई द्वीप-समुद्रों में गर्भज पर्याप्रक ही उपशमाते हैं । देवगति में भवनवासियों से लेकर उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त पर्याप्रक ही उपशमाते हैं ।[111]

सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा वेदकसम्यग्दृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को नहीं प्राप्त होते हैं, क्योंकि इन जीवों में उस प्रथमोपशम सम्यक्त्व स्वरूप पर्याय के द्वारा परिणमन होने की शक्ति का अभाव है । उपशम श्रेणी पर चढ़ने वाले वेदक सम्यग्दृष्टि जीव यद्यपि उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाले होते हैं, किन्तु उस सम्यक्त्व का 'प्रथमोपशम सम्यक्त्व' यह नाम नहीं हैं, क्योंकि उस उपशम श्रेणी वाले के उपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति सम्यक्त्व से होती है । इसलिए कहा है कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाला जीव मिथ्यादृष्टि ही होना चाहिए ।[112]

प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्रारम्भ करने वाला जीव शुभ परिणाम के अभिमुख होता है, अन्तर्मुहूर्त में अनन्तगुणी वृद्धि के द्वारा वर्धमान विशुद्धि वाला होता है, अन्यतम मनोयोग वाला या अन्यतम वचनयोग वाला या अन्यतम काययोग वाला होता है, हीयमान अन्यतम कषाय वाला होता है, साकारोपयोगी होता है, तीनों वेदों में से अन्यतम वेद वाला

---

111. *उवसामेंतो कम्हि उवसामेदि, चदुसु विगदीसु उवसामेदि । चदुसु विगदीसु उवसामेंतो पंचिंदिएसु उवसामेंतो, णो एइंदियविगलिंदियेसु । पंचिंदिएसु उवसामेंतो सण्णीसु उवसामेदि, णो असण्णीसु । सण्णीसु उवसामेंतो गब्भोवकंतिएसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु । गब्भोवकंतिएसु उवसामेंतो पज्जत्तएसु उवसामेदि, णो अपज्जत्तएसु । पज्जत्तएसु उवसामेंतो संखेज्जवस्साउग्गेसु वि उवसामेदि, असंखेज्जवस्साउगेसु वि । णेरइया पज्जत्तएसु उप्पादेंति, णो अप्पज्जत्तएसु एवं जाव सत्तसु पुढवीसु णेरइया । तिरिक्ख... पंचिंदिएसु... सण्णीसु... गब्भोवकंतिएसु... पज्जत्तएसु उप्पादेंति । एवं जाव सव्वदीवसमुद्देसु मणुस्सा.. गब्भोवकंतिएसु.. पज्जत्तएसु उप्पादेंति । एवं जाव अड्ढाइज्जदीवसमुद्देसु । देवा...पज्जतेसु उप्पादेंति । एवं जाव उपरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा त्ति ।* **ध.6/238,418-432**

112. *सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी वा पढमसम्मत्तं ण पडिवज्जदि, एदेसिं तेण पज्जाएण परिणमणसत्तीए अभावादो । उवसमसेडिं चडमाणवेदगसम्मा-इट्ठिणो उवसमसम्मत्तं पडिवज्जंता अत्थि, किंतु ण तस्स पढमसम्मत्तववएसो । कुदो? सम्मत्ता तस्सुप्पत्तीए । तदो तेण मिच्छाइट्ठिणा चेव होदव्वं ।* **ध.6/206**

होता है और संक्लेश से रहित होता है ।[113] प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख जीव असंयत होता है, मति व श्रुतज्ञान रूप साकारोपयोगी होता है, अनाकारोपयोगी नहीं होता, क्योंकि अनाकार उपयोगी के बाह्य अर्थ में प्रवृत्ति का अभाव है । कृष्णादि छहों लेश्याओं में से किसी एक लेश्या वाला हो किन्तु अशुभ लेश्या वाला हो तो हीयमान होना चाहिए, और यदि शुभ लेश्या वाला हो तो वर्धमान होना चाहिए ।[114] आठों कर्मों की जब अन्तः कोड़ाकोड़ी स्थिति को बाँधता है, तब यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है । जिस समय इन सर्व कर्मों की संख्यात हजार सागरोपम से हीन अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमाण स्थिति को स्थापित करता है उस समय यह जीव प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करता है ।[115]

जन्म के पश्चात् प्रथमोपशम सम्यक्त्व-प्राप्ति-योग्य सर्वलघु काल

नारकी मिथ्यादृष्टि पर्याप्तकों में सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले अन्तर्मुहूर्त से लगाकर अपने योग्य अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् उत्पन्न करते हैं, उससे नीचे नहीं । इस प्रकार सातों पृथ्वियों में जानना चाहिए । तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि पर्याप्तकों में सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले जीव दिवस-पृथक्त्व से लगाकर उपरिम काल में उत्पन्न करते हैं, नीचे के काल में नहीं । इस प्रकार सर्व द्वीप-समुद्रों में जानना चाहिए । मनुष्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्तकों में सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले जीव आठ वर्ष से लेकर ऊपर किसी भी समय में उत्पन्न करते हैं, उससे नीचे के काल में नहीं । इस प्रकार अढ़ाई द्वीप-समुद्रों में जानना चाहिए । देव मिथ्यादृष्टि पर्याप्तकों में प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले जीव अन्तर्मुहूर्त काल से लेकर ऊपर उत्पन्न करते हैं, उससे नीचे के काल में नहीं । इस प्रकार भवनवासी से लेकर उपरिम ग्रैवेयक भवनवासी देवों तक

---

113. *गृहीतुमारभमाणः शुभपरिणामाभिमुखः अन्तर्मुहूर्तमनन्तगुणवृद्ध्या वर्द्धमानविशुद्धिः.. अन्यतमेन मनोयोगेन... अन्यतरेण वाग्योगेन...अन्यतमेन काययोगेन वा समाविष्टः हीयमानान्यतमकषायः साकारोपयोगः, त्रिषु वेदेष्वन्यतमेन वेदेन, संक्लेशविरहितः।*
रा.वा. **9/1**

114. *असंजदो मदिसुदसागारुवजुत्तो । तत्थ अणागारुवजोगो णत्थि, तस्स बज्झत्थे पउत्तीए अभावादो । छण्णं लेस्साणमण्णदरलेस्सो किंतु हीयमाण असुद्धलेस्सो वड्ढमाणसुहलेस्सो ।* **घ.6/207**

115. *एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जावे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं बंधदि तावे पढमसम्मत्तं लभदि। एदेसिं चेव सव्वकम्माणं जाधे अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं ठवेदि संखज्जेहि सागरोवमसहस्सेहि ऊणियं ताधे पढमसम्मत्तमुप्पादेदि ।* **ध.6/203, 222**

जानना चाहिए ।[116]

दर्शनमोह का उपशम करने वाला जीव उपद्रव व उपसर्ग आने पर भी उसका उपशम किये बिना नहीं रहता ।[117]

सम्यक्त्वाभिमुख जीव पञ्चलब्धियों को क्रम से प्राप्त करता हुआ उपशमसम्यक्त्व को ग्रहण करता है । अत: पञ्चलब्धियों को कहते हैं -**1.** क्षयोपशमलब्धि, **2.** विशुद्धिलब्धि **3.** देशनालब्धि **4.** प्रयोग्यलब्धि, और **5.** करणलब्धि; ये पाँच लब्धियाँ होती हैं । इन लब्धियों का स्वरूप कहते हैं –

पाँच लब्धियों का विवेचन

1. क्षयोपशमलब्धि - कर्ममल रूप पटल की फलदान-शक्ति अर्थात् अनुभाग जिस काल में प्रतिसमय क्रम से अनन्तगुणा हीन होकर उदय को प्राप्त होता है, वह क्षयोपशम लब्धि है ।[118]

पूर्वसंचित कर्मों के मलरूप पटल के अनुभाग-स्पर्द्धक जिस समय विशुद्धि के द्वारा प्रतिसमय अनन्तगुण हीन होते हुए उदरीणाओं को प्राप्त किये जाते हैं उस समय क्षयोपशमलब्धि होती है ।[119]

2. विशुद्धिलब्धि - क्षयोपशमलब्धि से उत्पन्न जीव के जो परिणाम साता आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध के कारणभूत हैं वे विशुद्ध-परिणाम विशुद्धिलब्धि होते हैं ।[120]

---

116. *णेरइया मिच्छाइट्ठी पज्जत्तएसु उप्पादेंता अंतोमुहुत्तप्पहुडि जाव तत्पाओग्गंतोमुहुत्तं उवरिमुप्पादेंति णो हेट्ठा । एवं जाव सत्तसु पुढवीसु णेरइया । तिरिक्ख मिच्छाइट्ठी.. पज्जत्तएसु उप्पादेंता दिवसपुधत्तप्पहुडि जावमुवरिमुप्पादेंति णो हेट्ठादो । एवं जाव सव्वदीवसमुद्देसु । मणुस्सा मिच्छादिट्ठी.... पज्जत्तएसु उप्पादेंता अट्ठवारप्पहुडि जाव उवरिमुप्पादेंति, णो हेट्ठादो । एवं जाव...... उप्पाएंति, णो हेट्ठादो । एवं जाव उवरिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवात्ति ।* ध. **6/419-431**

117. *उवसामगो च सव्वो णिव्वाधादो तहा णिरासाओ ।* क.पा. **10/631**

118. *कम्ममलपडलसत्ती पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा ।*
होदूणुदीरदि जदा तदा खओवसमलद्धी दु ।। ल.सा. **1/4**

119. *पुव्वसंचिदकम्ममलपडलस्स अणुभागफद्दयाणि जदा विसोहीए पडिसमयमणंत-गुणहीणाणि होदूणुदीरिज्जंति तदा खओवसमलद्धी होदि ।* ध. **6/204**

120. *आदिमलद्धिभवो जो भावो जीवस्स सादपहुदीणं ।*
सत्थाणं पयडीणं बंधणजोगो विसुद्धलद्धी सो ।। ल.सा. **1/5**

प्रतिसमय अन्तगुणित-हीन-क्रम से उदीरित अनुभाग स्पर्द्धकों से उत्पन्न हुए, साता आदि शुभ कर्मों के बंध-निमित्त भूत और असाता आदि अशुभ कर्मों के बंध-विरोधी जो जीव के परिणाम हैं, उसे विशुद्धि कहते हैं। उसकी प्राप्ति का नाम विशुद्धिलब्धि हैं।[121]

3. देशनालब्धि - छह द्रव्य और नव पदार्थ का उपदेश करने वाले आचार्यादि का लाभ अथवा उपदिष्ट पदार्थों के धारण करने की शक्ति की प्राप्ति तीसरी देशनालब्धि है।[122]

छह द्रव्यों और नौ पदार्थों के उपदेश का नाम 'देशना' है। उस देशना से परिणत आचार्य आदि की उपलब्धि को और उपदिष्ट अर्थ के ग्रहण, धारण तथा विचार की शक्ति के समागम को देशनालब्धि कहते हैं।[123]

क्या मिथ्यादृष्टि से देशना संभव है ?

(क) मिथ्यादृष्टि के उपदेश से देशना संभव नही - ज्ञान-विज्ञान से रहित होने के कारण जिसने स्वयं प्रमाणता प्राप्त नहीं की ऐसे व्याख्याता के वचन प्रमाणरूप नहीं हो सकते।[124] धर्म का स्वरूप मिथ्यादृष्टियों के द्वारा नहीं कहा जा सकता है।[125]

(ख) कदाचित् मिथ्यादृष्टि से भी देशना की संभावना - मिथ्यादृष्टि को जो ग्यारह अंग का ज्ञान होता है वह केवल पाठ मात्र है, उसके अर्थों का ज्ञान उसको नही होता, यह कहना ठीक नही। क्योंकि शास्त्रों में कहा गया है कि मिथ्यादृष्टि मुनियों के उपदेश से अन्य कितने ही भव्य जीवों को सम्यग्दर्शन पूर्वक सम्यग्ज्ञान प्रगट हो जाता है।[126]

4. प्रायोग्यलब्धि - कर्मों की स्थिति को अन्त: कोड़ाकोड़ी तथा अनुभाग को द्विस्थानिक करने को प्रायोग्यलब्धि कहते हैं।[127]

---

121. *पडिसमयमणंतगुणहीणकमेण उदीरिद-अणुभागफद्दयजणिदजीवपरिणामो सादादि-सुहकम्मबंधणिमित्तो असादादि असुहकम्मबंधविरुद्धो विसोही णाम। तिस्से उवलंभो विसोहिलद्धी णाम।* **ध. 6/204**

122. *छद्दव्वणवपयत्थोपदेसयर-सूरिपहुदि-लाहवो जो।*
देसिदपदत्थधारण-लाहो वा तदियलद्धी दु ॥ ल. सा. **1/6**

123. *छद्दव्व-णवपदत्थोवदेशो देसणा णाम। तीए देसणाए परिणदआइरियादीणमुवलंभो, देसिदत्थस्स गहण-धारणविचारणसत्तीए समागमो देसणालद्धी णाम।* ध. **6/204**

124. *ज्ञानविज्ञानविरहादप्राप्तप्रामाण्यस्य व्याख्यातुर्वचनस्य प्रामाण्याभावात्।* **ध.1.195**

125. *न सम्यग्गदितुं शक्यं यत्स्वरूपं कुदृष्टिभि:।* **ज्ञा.2/3 पृ.46**

126. *न वाच्यं पाठमात्रत्वमस्ति तस्येह नार्थत: यतस्तस्योपदेशाद्वै ज्ञानं विन्दन्ति केचन।* **ल.सा.टी.5**

127. *अंतोकोडाकोडी विट्ठाणे ठिदिरसाण जं करणं।*
पाउग्गलद्धिणामा भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥ **ल.सा. 1/7**

सर्व कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभाग का घात करके अन्त:कोड़ाकोड़ी स्थिति में और द्विस्थानीय अनुभाग में अवस्थान करने को प्रायोग्यलब्धि कहते हैं ।[128]

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख जीव के स्थिति-बन्धादि

स्थितिबन्ध- प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सम्मुख जीव विशुद्धता की वृद्धि करता हुआ प्रायोग्यलब्धि के प्रथम समय से लगाकर पूर्व स्थिति-बंध के संख्यातवें भाग मात्र अंत:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण आयु बिना सात कर्मों की स्थिति बंध के करता है ।

अनुभागबंध - अप्रशस्त प्रकृतियों का द्विस्थानीय अनुभाग प्रतिसमय अनन्तगुणा घटता हुआ बाँधता है और प्रशस्त प्रकृतियों का चतु:स्थानीय अनुभाग प्रतिसमय अनन्तगुणा बढ़ता हुआ बाँधता है ।

प्रदेशबंध - मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी - चतुष्क, स्त्यानगृद्धि-त्रिक, देवचतुष्क, वज्रऋषभनाराच-संहनन, प्रशस्तविहायोगति, सुभगादि तीन एवं नीचगोत्र । इन प्रकृतियों का उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध करता है । महादण्डक में कहीं **61** प्रकृतियों (पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, प्रत्याख्यानावरण अप्रत्याख्यानावरण-संज्वलन क्रोध- मान- माया व लोभ ये **12** कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्माणशरीर, औदारिकशरीर अङ्गोपाङ्ग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, यश:कीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय) का अनुत्कृष्ट प्रदेशबंध करता है ।

उदय, उदीरणा - उदय को प्राप्त प्रकृतियों की उदय की अपेक्षा एक स्थिति जो उदय को प्राप्त हुआ एक निषेक है, उसी का भोक्ता होता है । अप्रशस्त प्रकृतियों का द्विस्थानरूप और प्रशस्त प्रकृतियों के चतु:स्थानरूप अनुभाग का भोक्ता होता है । उदय प्रकृतियों का अजघन्य वा अनुत्कृष्ट प्रदेशों को भोगता है । जो प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग उदयरूप हों उन्हीं की उदीरणा करने वाला होता है ।

सत्व - सत्तारूप प्रकृतियों का स्थिति, अनुभाग और प्रदेश अजघन्य-अनुत्कृष्ट

---

128. *सव्वकम्माणमुक्कस्सट्ठिदिमुक्कस्साणुभागं च घादिय अंतोकोडाकोडिट्ठिदिम्हि वेट्ठाणाणुभागे च अवट्ठाणं पाओग्गलद्धी णाम ।* ध. **6/204**

है । ऐसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेश रूप चतुष्क हैं, सो बंध, उदय, उदीरणा और सत्त्व सभी में कहे । यह क्रम प्रायोग्यलब्धि के अन्त पर्यंत जानना ।[129]

अंत:कोड़ाकोड़ी - कोटि के ऊपर और कोटाकोटी के नीचे जो होता है उसे अंत:कोड़ाकोड़ी कहते हैं ।

एक कोड़ाकोड़ीसागरोपम को संख्यात कोटियों से खण्डित करने पर जो एक खण्ड होता है वह अंत:कोड़ाकोड़ी का अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।[130]

5. करणलब्धि - करण शब्द का अर्थ है 'परिणाम' ।[131] जिस परिणाम विशेष के द्वारा उपशमादि रूप विवक्षित भाव उत्पन्न किया जाता है, वह परिणाम करण कहलाता है और सुने हुए उपदेश का भलीभाँति निदिध्यासन करना करणलब्धि है ।

इन पाँचों लब्धियों में से पहली चार तो सामान्य हैं जो भव्य-अभव्य दोनों के होती हैं । किन्तु करणलब्धि सम्यक्त्व होने के समय होती है ।[132] करणलब्धि भव्य जीव के ही सम्यक्त्व-ग्रहण वा चारित्र-ग्रहण के काल में ही होती है । अर्थात् करणलब्धि की प्राप्ति के पश्चात् सम्यक्चारित्र अवश्य होता है ।[133] करणलब्धि के तरतमता को लिए हुए तीन प्रकार होते हैं - अध:प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ।[134]

(क) अध:प्रवृत्तकरण का लक्षण - इस करण में 'अधस्तन' (नीचे के) भाव उपरितन भावों के सदृश होते हैं । अत: प्रथम करण को अध:प्रवृत्तकरण कहा गया हैं ।[135]

---

129. *सम्मत्तहिमुहमिच्छो विसोहिवड्ढीहि वड्ढमाणो हु । अंतोकोडाकोडि सत्तण्हं बंधणं कुणई ।। अंतोकोडाकोडीठिदिं असत्थाण सत्थगाणं च । वि चउट्ठाणरसं च य बंधाणं बंधणं कुणइ ।। मिच्छणथीणति सुरचउ समवज्जपसत्थगमणसुभगतिय। णीचुक्कस्सपदेसमणुक्कस्सं वा पबंधदि हु ।।.... एकट्ठि पमाणाणमणुक्कस्सपदेसं बंधणं कुणई ।। उदइल्लाणं उदये पत्तेक्कठिदिस्सवेदगो होदि । विचउट्ठाणम सत्थे सत्थे उदयल्लरसभुत्ती ।। अजहण्णमणुक्कस्सप्पदेसमणुभवदि सोदयाणं तु । उदयिल्लाणं पयडिचउक्काणमुदीरगो होदि ।। अजहण्णमणुक्कस्सं ठिदीतियं होदि सत्तपयडीणं । एवं पयडिचउक्कं बंधादिसु होदि पत्तेयं ।।* ल.सा. **9,24-26,29,30,32**

130. *सागरोवमकोडाकोडि संखेज्जकोडीहि खंडिदएगखंडं होदि त्ति घेत्तव्वं ।* ध. **6/74**

131. *करणा: परिणामा: ।* ध. **1/180**

132. *चत्तारि वि (लब्धि) सामण्णं करणं पुण होइ सम्मते ।* ध. **6**/गा. **205**

133. *करणलब्धिस्तु भव्य एव स्यात् तथापि सम्यक्त्वग्रहणे चारित्रग्रहणे च ।* गो.जी/जी.प्र.टी.**651**

134. **ष.ख.6/19-8/सू. 3-8/203-238** जै.सि.को.**1/438**

135. *जह्मा हेट्ठिमभावा उवरिमभावेहिं सरिसगा होंति ।
तह्मा पढमं करणं अधापवत्तो त्ति णिद्दिट्ठं ।।* ल.सा. **35**

जिस कारण से विद्यमान जीव के करणरूप परिणाम अर्थात् उपरितन (आगे के) समय के परिणाम नीचे के (पूर्व के) समय के परिणाम सदृश होते हैं वह अध:प्रवृत्तकरण है। अर्थात् इस करण में उपरिम समय के परिणाम नीचे के समय में भी पाये जाते हैं, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।[136]

अध: प्रवृत्तकरण का काल-अध: प्रवृत्तकरण का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है।[137]

अध:प्रवृत्तकरण के चार आवश्यक - अध:प्रवृत्तकरण में स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, गुणश्रेणी ओर गुणसंक्रमण नहीं होता है; क्योंकि इन अध: प्रवृत्ति परिणामों के पूर्वोक्त चतुर्विध कार्यों के उत्पादन करने की शक्ति का अभाव है। केवल अनन्तगुणी विशद्धि के द्वारा प्रतिसमय विशुद्धि को प्राप्त होता हुआ यह जीव अप्रशस्त कर्मों के द्विस्थानीय अर्थात् नींबू और कांजीररूप अनुभाग को प्रतिसमय अनन्तगुणित हीन बाँधता है और प्रशस्त कर्मों के गुड़, खाण्ड आदि चतु:स्थानीय अनुभाग को प्रतिसमय अनन्तगुणित बाँधता है। यहाँ अर्थात् अध:प्रवृत्तकरण काल में स्थितिबंध का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है। एक-एक स्थिति-बन्धकाल के पूर्ण होने पर पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन अन्य स्थिति को बाँधता है। इस प्रकार संख्यात सहस्रबार स्थिति-बन्धापसरणों के करने पर अध:प्रवृत्तकरण का काल समाप्त होता है। अध:प्रवृत्तकरण के प्रथम समय संबंधी स्थितिबंध से उसी का अन्तिम समय संबंधी स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन होता है। यहाँ पर ही अर्थात् अध:प्रवृत्तकरण के चरम समय में, प्रथम सम्यक्त्व के अभिमुख जीव के जो स्थितिबंध होता है, उससे प्रथम सम्यक्त्व सहित संयमासंयम के अभिमुख जीव का स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन होता है। इससे प्रथम सम्यक्त्व सहित सकल संयम के अभिमुख जीव का अध:प्रवृत्तकरण के अन्तिम समय संबंधी स्थितिबंध संख्यातगुणा हीन होता है।[138]

इस प्रकार इस करण में चार आवश्यक जाने **1.** प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि; **2.** अप्रशस्त प्रकृतियों का केवल द्विस्थानीय बंध और उसमें भी अनन्तगुणी हानि; **3.** प्रशस्त प्रकृतियों के चतु:स्थानीय अनुभाग-बंध में प्रतिसमय अनन्तगुणी वृद्धि और **4.** स्थिति-बंधापसरण।

(ख) अपूर्वकरण का लक्षण - अपूर्वकरण गुणस्थान में भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणामों की अपेक्षा कभी भी सदृशता नहीं पाई जाती है, किन्तु एक समयवर्ती जीवों के परिणामों की अपेक्षा सदृशता और विसदृशता दोनों ही पाई जाती है। इस गुणस्थान में

---

136. ज.ध. **12/233**

137. *अंतोमुहुत्तमेत्तो तक्कालो होदि तत्थ परिणाम।* गो.जी. **49**

138. ध. **6/5/222**

विसदृश अर्थात् भिन्न-भिन्न समय में रहने वाले जीव, जो पूर्व में कभी भी प्राप्त नहीं हुए थे, ऐसे अपूर्व परिणामों को ही धारण करते हैं। इसलिए इस गुणस्थान का नाम अपूर्वकरण है।[139]

अपूर्वकरण का काल - अपूर्वकरण का काल अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है।[140]

अपूर्वकरण के चार आवश्यक - इस करण में **1.** गुणश्रेणीनिर्जरा, **2.** गुणसंक्रमण, **3.** स्थितिकाण्डकघात, **4.** अनुभागकाण्डकघात ये चार आवश्यक होते हैं।

(ग) अनिवृत्तिकरण का लक्षण - समान समयवर्ती जीवों के परिणामों की भेद-रहित वृत्ति को निवृत्ति कहते हैं अथवा निवृत्ति शब्द का अर्थ व्यावृत्ति भी है। अतएव जिन परिणामों की निवृत्ति अर्थात् व्यावृत्ति नहीं होती उन्हें ही अनिवृत्ति कहते हैं।[141]

अन्तर्मुहूर्त मात्र अनिवृत्तिकरण के काल में से किसी एक समय में रहने वाले अनेक जीव जिस प्रकार शरीर के आकार, वर्ण आदि बाह्यरूप से और ज्ञानोपयोगादि अन्तरंग रूप से परस्पर भेद को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार जिन परिणामों के द्वारा उनमें भेद नहीं पाया जाता है उनको अनिवृत्तिकरण परिणाम वाले कहते है और उनके प्रत्येक समय में उत्तरोत्तर अनन्त गुणी विशुद्धि से बढ़ते हुए एक से ही (समान विशुद्धि को लिए हुए ही) परिणाम पाये जाते हैं तथा वे अत्यन्त निर्मल ध्यान रूप अग्नि की शिखाओं से कर्मवन को भस्म करने वाले होते हैं।[142]

अनिवृत्तिकरण का काल - अनिवृत्तिकरण का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है।[143]

अनिवृत्तिकरण के चार आवश्यक - इसमें अन्य स्थितिखण्ड, अन्य अनुभाग खण्ड और अन्य स्थिति बन्ध (अपसरण) को आरंभ करता है। पूर्व में अपकर्षित प्रदेशाग्र से असंख्यात गुणित प्रदेश का अपकर्षण कर अपूर्वकरण के समान गलितावशेष गुणश्रेणी

---

139. *भिण्ण-समय-ट्ठिएहि दु जीवेहि ण होइ सव्वदा सिरसो ।।*
करणेहि एक्कसमयट्ठिएहि सरिसो विसरिसो य ।।116।।
एदम्हि गुणट्ठाणे विसरिस-समय ट्ठिएहि जीवेहि ।
पुव्वमपत्ता जम्हा होंति अपुव्वा हु परिणामा ।।117।। **ध.1/184**

140. *अपुव्वकरणद्धा अंतोमुहुत्तमेत्ता होदि त्ति ।* **ध.6/220**

141. *समानसमयावस्थितजीवपरिणामानां निर्भेदेन वृत्तिनिवृत्तिः ।*
अथवा निवृत्तिर्व्यावृत्तिः न विद्यते निवृत्तिर्येषां तेऽनिवृत्तयः।। **ध.1/183**

142. *एक्कम्मिकालसमए संठाणादीहि जह णिवट्टंति ।*
ण णिवट्टंति तहच्चिय परिणामेहिं मिहो जे हु ।।119।।
होंति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जेस्सि मेक्क परिणामा ।
विमलयरझाणहुयवहसिहाहि णिद्दड्ढकम्मवणा ।।120।। **ध. 1/186**

143. *अणियट्टीकरणद्धा अंतोमुहुत्तमेत्ता होदि त्ति ।* **ध. 6/221**

को करता है। इस प्रकार सहस्रों स्थितिबंध, स्थिति-काण्डकघात, और अनुभागकाण्डकघातों के व्यतीत होने पर अनिवृत्तिकरण के काल का अन्तिम समय प्राप्त होता है।[144]

तीनों करणों के काल में परस्पर तर-तमता - तीनों ही करण प्रत्येक अन्तर्मुहूर्त काल मात्र स्थिति युक्त हैं तथापि ऊपर-ऊपर संख्यातगुणा क्रम लिए हैं। अनिवृत्तिकरण का काल स्तोक है। उससे अपूर्वकरण का संख्यात गुणा है। उससे अध:प्रवृत्तकरण का संख्यातगुणा है। (तीनों का थोड़ा मिलाकर भी काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है।)[145]

त्रिकरण का माहात्म्य - क्रमश: अध:प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ये तीनों करण विशिष्ट निर्जरा के साधनभूत विशुद्ध परिणाम हैं।[146]

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व का विवेचन

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व अर्थात् सम्यक्त्व पूर्वक होने वाला उपशम सम्यक्त्व द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहलाता है। उपशम श्रेणी के योग से जिसका मोह (दर्शन-मोह) उपशान्त हो चुका है उसके जो मोह के उपशम से सम्यक्त्व उत्पन्न होता है वह द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहलता है।[147]

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को वेदक-सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त ही तीन करण रूप परिणामों के द्वारा सातों प्रकृतियों का उपशम करके ग्रहण करता है।[148]

---

144. *अण्णो ट्ठिदिखंडओ अण्णो अणुभागखंडओ, अण्णो ट्ठिदिबंधो च आढत्तो। पुव्वोकड्डिदपदेसग्गादो असंखेज्जगुणं पदेसमोकड्डिदूण अपुव्वकरणोव्व गलिदसेसं गुणसेढिं करेदि।.....एवं ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिखंडय-अणुभागखंडय-सहस्सेसु गदेसु अणियट्टीअद्धाए चरिमसमयं पावदि।* **ध. 6/229**

145. *अंतोमुहुत्तकालो तिण्णि वि करणा हवंति पत्तेयं। उवरीदो गुणियकमा कमेण संखेज्जरूवेण॥ एते त्रयोऽपि करणपरिणामा: प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तकाला भवन्ति। तथापि उपरित: अनिवृत्तिकरणकालात्क्रमेणापूर्वकरणाध:प्रवृत करणकालौ संख्येयरूपेण गुणितक्रमौ भवत:। तत्र सर्वत: स्तोकान्तर्मुहूर्त: अनिवृत्तिकरणकाल:। तत: संख्येय गुण: अपूर्वकरण काल:, तत:संख्येयगुण: अध:प्रवृत्तकरणकाल:।* **ल.सा./जी.प्र.टी.34**

146. *क्रमेणाध: प्रवृत्तकरणमपूर्वकरणयनिवृत्तिकरणं च विशिष्टनिर्जरासाधनं विशुद्ध-परिणामम्?* **ल.सा./जी.प्र.टी.33**

147. ल.सा. **2**

148. *तद् द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं वेदकसम्यग्दृष्ट्यप्रमत एव करणत्रयपरिणामै: सप्तप्रकृतिरूपशमय्य गृह्णाति।* **गो.क./जी.प्र.टी.550**

द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन के स्वामी

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है। श्रेणी से उतरते हुए अविरतादि गुणस्थानों में होता है।[149] द्वितीयोपशम सम्यक्त्व पर्याप्त मनुष्य व निर्वृत्यपर्याप्त वैमानिक देवों में ही होता है।[150]

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होकर, उपशमश्रेणी पर आरोहण करके, उपशान्त कषाय गुणस्थान में जाकर और वहाँ तत्योग्य अन्तर्मुहूर्त काल तक स्थित रहकर क्रम से नीचे गिरता हुआ अर्थात् क्रमपूर्वक **10, 9, 8** गुणस्थानों में से होता हुआ अप्रमत्तसंयत गुणस्थान को प्राप्त करता है। वहाँ प्रमत्त व अप्रमत्त गुणस्थान में हजारों बार उतरना-गिरना करता है अथवा नीचे देशसंयत होकर रहता है अथवा असंयत होकर रहता है या मरण करके असंयत देव (निवृत्त्यपर्याप्त) होता है अथवा मिश्रप्रकृति के उदय से मिश्रगुणस्थानवर्ती होता है। अनन्तानुबंधी चतुष्क में से किसी एक का उदय आने पर द्वितीयोपशम की विराधना करके किन्हीं आचार्यों के मत से सासादन को भी प्राप्त हो जाता है अथवा मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है।[151]

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के काल के भीतर असंयम को भी प्राप्त हो सकता है, संयमासंयम को भी प्राप्त हो सकता है और छह आवलियों के शेष रहने पर सासादन को भी प्राप्त हो सकता है। यह कषायप्राभृत-चूर्णिसूत्रकार (यतिवृषभाचार्य) का अभिप्राय है। किन्तु भगवान भूतबलि के उपदेशानुसार उपशमश्रेणी से उतरता हुआ सासादन गुणस्थान को प्राप्त नहीं करता।[152]

---

149. *विदियुवसमसम्मत्तं अविरदसम्मादि संतमोहो त्ति।*
विदियुवसमसम्मत्तं सेडीदोदिण्ण अविरदादिसु॥ गो.जी.,टी.**696-730**

150. *द्वितीयं पर्याप्तमनुष्यनिर्वृत्त्यपर्याप्तवैमानिकयोरेव।* गो.क./जी.प्र.**550**

151. *द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा उपशमश्रेणिमारुह्य उपशान्तकषायं गत्वा अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा क्रमेण अवतीर्य अप्रमत्तगुणस्थानं प्राप्य प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्राणि करोति। वा अधः देशसंयमो भूत्वा आस्ते। वा असंयतो भूत्वा आस्ते। वा मरणे देवासंयतः स्यात् वा मिश्रप्रकृत्युदये मिश्रः स्यात्। अनन्तानुबन्ध्यन्यतमोदये द्वितीयोपशम-सम्यक्त्वं विराधयतीत्याचार्यपक्षे सासादनः स्यात् वा मिथ्यात्वोदये मिथ्यादृष्टिः स्यात् इति।* गो.जी./जी.प्र.टी.**704**

152. *एदिस्से उवसम्मत्ताए अब्भंतरादो असंजमं पि गच्छेज्ज, संजमासंजमं पि गच्छेज्ज, छसु आवलियासु सेसासु सासाणं पि गच्छेज्ज।.... ऐसो पाहुडचुण्णिसुत्ताभिप्पाओ। भूदबलिभयवंतस्सुवएसेण उवसमसेडीदो ओदिण्णो ण सासाणत्तं पडिवज्जदि।*
ध. **6/331**

क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व का विवेचन

चार अनन्तानुबंधी कषाय, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन छह प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय और इन्हीं के सदवस्था रूप उपशम से देशघाती स्पर्द्धक वाली सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से जो तत्त्वार्थश्रद्धान होता है वह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है ।[153]

सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृति के उदय से पदार्थों का जो चल, मलिन और अगाढ़रूप श्रद्धान होता है उसको वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यग्दर्शन कहते हैं ।[154]

वेदक सम्यक्त्व की मलिनता का निर्देश - वेदक सम्यग्दृष्टि जीव शिथिल श्रद्धानी होता है, इसलिए वृद्ध पुरुष जिस प्रकार अपने हाथ में लकड़ी को शिथिलता पूर्वक पकड़ता है उसी प्रकार वह भी तत्त्वार्थ के श्रद्धान में शिथिलग्राही होता है। अतःकुहेतु और कुदृष्टान्त से उसे सम्यक्त्व की विराधना करने में देर नहीं लगती है ।[155]

सम्यक्त्व नाम की देशघाती प्रकृति के उदय से सम्यक्त्व चल, मलिन व अगाढ़ दोष से युक्त हो जाता है, परंतु नित्य ही (अर्थात्-सर्वाधिक काल **66** सागर स्थिति वाला सम्यग्दर्शन) दर्शन-मोहनीय कर्मक्षय का हेतु है ।[153]

वेदक सम्यक्त्व का स्वामित्व - वेदक सम्यग्दृष्टि जीव असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होते हैं ।[157]

प्रश्न.- ऊपर के आठवें आदि गुणस्थानों में वेदक सम्यग्दर्शन क्यों नही होता है ?

---

153. *अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोश्चोदयक्षयात्सदुपशमाच्च सम्यक्त्वस्य देशघातिस्पर्धकस्योदये तत्त्वार्थश्रद्धानं क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् ।*
स.सि. **2/5**

154. *दंसणमोहुदयादो उप्पज्जई जं पयत्थ-सद्दहणं ।*
चलमलिनमगाढं तं वेदगसम्मत्तमिह मुणहु ।।215।। ध. **1/398**

155. *जो पुण वेदयसम्माइट्ठी सो सिथिलसद्दहणो थेरस्स लट्ठिग्गहणं व सिथिलग्गाहो कुहेउकुदिट्ठंतेहि झडिदि विराहओ ।* ध. **1/171**

156. *सम्मत्तदेसघादिस्सुदयादो वेदगं हवे सम्मं ।*
चलमलिनगाढं तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदू ।। गो.जी. **25**

157. *वेदगसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठीप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति ।*
ध. **1/1.1/**सूत्र**146/397**

उत्तर - नहीं होता, क्योंकि अगाढ़ आदि मल-सहित श्रद्धान के साथ क्षपक और उपशम श्रेणी का चढ़ना नहीं बनता है ।[158]

क्षायिक सम्यक्त्व का विवेचन

दर्शनमोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने पर निर्मल श्रद्धान होता है, उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं । वह सम्यक्त्व नित्य है और कर्मों के क्षय करने का कारण है । श्रद्धान को भ्रष्ट करने वाले वचनों से, तर्कों से, इन्द्रियों को भय उत्पन्न करने वाले रूपों से तथा वीभत्स और जुगुप्सित पदार्थों से भी चलायमान नहीं होता । अधिक क्या कहा जाए वह त्रैलोक्य के द्वारा भी चल-विचल नहीं होता । क्षायिक सम्यक्त्व के प्रारंभ होने पर अथवा प्राप्ति या निष्ठापन होने पर, क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों के ऐसी विशाल, गंभीर एवं दृढ़ बुद्धि उत्पन्न हो जाती है कि वे कुछ (असंभव या अनहोनी घटनाएँ) भी देखकर विस्मय या क्षोभ को प्राप्त नहीं होते ।[159]

क्षायिक सम्यक्त्व का स्वामित्व - दर्शनमोह की क्षपणा का प्रस्थापक कर्मभूमिज मनुष्य ही होता है । परंतु उसका निष्ठापक तो अबद्धायुष्क की अपेक्षा उसी स्थान में अर्थात् जहाँ प्रारंभ किया था ऐसी उस मनुष्यगति में ही होती है, और बद्धायुष्क की अपेक्षा, विमानवासी देवों में, भोगभूमिज मनुष्यों व तिर्यंचों में और धर्मा नामक प्रथम नरक (पृथ्वी) में भी होता है, क्योंकि बुद्धायुष्क कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि मरकर चारों ही गतियों में उत्पन्न हो सकता है ।[160]

दुःषमा, दुःषमा-दुःषमा, सुषमा-सुषमा, सुषमा और सुषमा-दुःषमा काल में उत्पन्न हुए मनुष्य के दर्शनमोह का क्षपण निषेध करने के लिए सूत्र में 'जहाँ जिन होते हैं' यह वचन कहा गया है । जिस काल में जिन संभव है उस काल में ही दर्शनमोह की क्षपणा का

---

158. *उपरितनगुणेषु किमिति वेदकसम्यक्त्वं नास्तीति चेन्न, अगाढसमलश्रद्धानेन सह क्षपकोपशमश्रेण्यारोहणानुपपत्तेः ।* **ध. 1/397**

159. *खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होइ ।*
तं खाइयसम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेउं ।।
वयणेहिं वि हेऊहि य इंदियभय-जणणगेहिं रूवेहिं ।
वीभच्छ-दुगुंछेहि य ण तेल्कोक्केण चालिज्जा ।।
एवं विउला बुद्धी ण विंभयमेदि किंचि दट्ठूण ।
पट्ठविए सम्मत्ते खइए जीवस्स लद्धीए ।। **पं.स./प्रा.160-162**

160. *दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुसो ...। णिट्ठवगो तट्ठाणे विमाणभोगावणीसु धम्मे य । किदकरणिज्जो चुदुसु वि गदीसु उप्पज्जदे जम्हा ।* **ल.सा.110-111**

प्रस्थापक होता है, अन्य काल में नहीं । अर्थात् जिस काल में केवलज्ञानी होते हैं अथवा तीर्थंकर का पादमूल होता है अथवा चतुर्दश पूर्वधर होते हैं, इन तीनों के पादमूल में कर्मभूमिज मनुष्य दर्शनमोह की क्षपणा का प्रारंभक होता है ।[161]

संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं । क्योंकि अणुव्रत-सहित क्षायिक सम्यग्दृष्टियों का होना अत्यन्त दुर्लभ है । तिर्यंचों में क्षायिक सम्यक्त्व के साथ संयमासंयम नहीं पाया जाता, क्योंकि तिर्यंचों में दर्शनमोह की क्षपणा का अभाव है।[162]

क्षायिक सम्यग्दृष्टि के पश्चात् भवधारण की सीमा - दर्शनमोह - क्षय हो जाने पर उस ही भव में या तीसरे भव में अथवा मनुष्य या तिर्यंच की आयु यदि पूर्व में बाँध ली हो तो भोगभूमि की अपेक्षा चौथे भव में सिद्धि प्राप्त करते हैं । वे चौथे भव का उल्लंघन नहीं करते । औपशमिक तथा क्षायोपशमिक की भाँति यह नाश को प्राप्त नहीं होता ।[163]

D D D D

---

161. *दुस्सम, दुस्सम-दुस्सम, सुस्समासुस्समा, सुसमा, सुसमादुस्समा-कालुप्पण्णमणुसाणं खवणणिवारणट्ठं 'जम्हि जिणा' त्ति वयणं । जम्हि काले जिणा संभवंति तम्हि चेव खवणाए पट्ठवओ होदि, ण अण्णकालेसु । ... जम्हि केवलिणाणिणो अत्थि...तित्थयरपादमूले ...अधवा चोद्दसपुव्वहरा... एदाणं तिण्हं पि पादमूले दंसणमोहक्खवणं पट्ठवेंति त्ति ।* **ध.6/246**

162. *संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी । कुदो ? अणुव्वयसहिदखइयसम्मा-दिट्ठीणमइदुल्लभत्तादो । ण च तिरिक्खेसु खइयसम्मत्तेण सह संजमासंजमो लब्भदि, तत्थ दंसणमोहणीयखवणाभावा ।* **ध. 5/256**

163. *दंसणमोहे खविदे सिज्झति तत्थेव तदियतुरिय भवे ।*
णादिक्कदि तुरियभवे ण विणस्सति सेससम्मे वा ।। **क्ष.सा. 165**

पञ्चम अध्याय

व्यवहार (सराग) तथा निश्चय (वीतराग) सम्यग्दर्शन

सम्यग्दर्शन के निश्चय और व्यवहार इन दोनों भेदों को समझने के लिए आगम और अध्यात्म को समझना आवश्यक है, क्योंकि इस ग्रंथ में निश्चय तथा व्यवहार सम्यग्दर्शन का कथन आगम और अध्यात्म की शैली में किया गया है।

आगम और अध्यात्म - आगम और अध्यात्म यद्यपि दोनों द्वादशांग रूप एक ही जिनवाणी के भेद हैं फिर भी दोनों की कथन-शैली तथा भाषा में बहुत अंतर है; यही कारण है कि जैनाचार्यों ने अपने विवक्षित विषय को सरलतम ढंग से भेद करके शिष्यों को समझाने हेतु स्व-पर उपकारार्थ स्वतंत्र भाषा शैलियों का उपयोग किया है। क्योंकि वीतराग सर्वज्ञ देव के द्वारा कहे गये षट्द्रव्य व सप्ततत्व आदि का सम्यक् श्रद्धान व ज्ञान तथा व्रतादि के अनुष्ठान रूप चारित्र तथा भेदरत्नत्रय का स्वरूप जिसमें प्रतिपादित किया गया हो उसको आगम शास्त्र कहते हैं।[164] जबकि अभेद रूप रत्नत्रय के प्रतिपादक अर्थ और पदों के अनुकूल जहाँ व्याख्यान किया जाता है उसे अध्यात्म शास्त्र कहते हैं।[165] मिथ्यात्व, रागादि समस्त विकल्प समूह के त्याग निज शुद्धात्मा में जो अनुष्ठान (प्रवृत्ति) करना है उसको अध्यात्म कहते हैं।[166] इस प्रकार आगम और आध्यात्मिक शैली के सूक्ष्म अन्तर को आगे सर्वत्र जानना चाहिए।

आगमिक व्यवहार सम्यग्दर्शन का विवेचन

व्यवहार सम्यग्दर्शन का लक्षण - जो वीतराग अर्हन्त को देव, दया को उत्कृष्ट धर्म और निर्ग्रंथ को गुरु मानता है वही सम्यग्दृष्टि है।[167]

---

164. *वीतरागसर्वज्ञप्रणीतं षड्द्रव्यादि-सम्यक्श्रद्धानज्ञानव्रताद्यनुष्ठान ।*
भेदरत्नत्रयस्वरूपं यत्र प्रतिपाद्यते तदागमशास्त्रं भण्यते ॥ पं.का./ता.वृ.टी. **173**

165. *अर्थपदानामभेदरत्नत्रयप्रतिपादकानामनुकूलं यत्र व्याख्यानं क्रियते तदध्यात्मशास्त्र भण्यते ।* पं.का./ता.वृ.टी.**173**

166. *मिथ्यात्वरागादिसमस्तविकल्पजालरूपपरिहारेणस्वशुद्धात्मन्याधियदनुष्ठानं तदध्यात्ममिति ।* द्र. सं. टी. **57**

167. *णिज्जियदोसं देवं सव्वजीवाणं दयावरं धम्मं ।*
विज्जयगंथं च गुरुं जो हु मण्णदि सद्दिट्ठी ॥ का. अ. **317**

तीन मूढ़ता और आठ मद से रहित सत्यार्थ का देव, शास्त्र और गुरु इन तीनों का आठ अंग सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ।[168] अपने अपने स्वभाव में स्थित तत्त्वार्थ के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं ।[169]

देव - जो त्रिकालवर्ती गुण-पर्यायों से संयुक्त समस्त लोक और अलोक को प्रत्यक्ष जानते हैं वे सर्वज्ञ देव हैं ।[170] इन्हें आप्त भी कहते हैं । नियम से वीतराग, सर्वज्ञ और आगम का ईश ही आप्त होता है, निश्चय करके किसी अन्य प्रकार आप्तपना नहीं हो सकता ।[171]

आगम (शास्त्र) - आगम, सिद्धांत और प्रवचन ये शब्द एकार्थवाची हैं ।[172]

पूर्वापरविरुद्धादि दोषों के समूह से रहित और पदार्थों के द्योतक आप्तवचन को आगम कहते हैं । आप्त के वचन को आगम जानना चाहिए और जिसने जन्म-जरा आदि अठारह दोषों का नाश कर दिया है उसे आप्त जानना चाहिए । इस प्रकार जो त्यक्तदोष होता है वह असत्य वचन नहीं बोलता है, क्योंकि उसके असत्य वचन बोलने का कोई कारण ही संभव नही हैं । राग से, द्वेष से अथवा मोह से असत्य वचन बोला जाता है, परंतु जिसके ये रागादि दोष नही हैं उसके असत्य वचन बोलने का कोई कारण नहीं पाया जाता है ।[173]

जो आप्त के द्वारा कहा हुआ हो, वादी-प्रतिवादी द्वारा खण्डन करने में न आवे, प्रत्यक्ष-अनुमानादि प्रमाणों से विरोध रहित हो, वस्तु-स्वरूप का उपदेश करने वाला हो, सब जीवों का हित करने वाला हो और मिथ्यामार्ग का खण्डन करने वाला हो, वह सत्यार्थ

---

168. *श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्*
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ।। र. क. श्रा. **4**

169. *तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।* त. सू. **1/2**

170. *जो जाणदि पच्चक्खं तियाल-गुण-पच्चएहिं संजुत्तं ।*
लोयालोयं सयलं सो सव्वण्हू हवे देवो ।। का. अ. **302**

171. *आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।*
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ।। र. क. श्रा. **5**

172. *आगमो सिद्धांतो पवयणमिदि एयट्ठो ।* ध. **1 /20**

173. *पूर्वापरविरुद्धादेर्व्यपेतो दोषसंहतेः ।*
द्योतकः सर्वभावनामाप्तव्याहतिरागमः ।।9।।
आगमोह्याप्तवचनमाप्तं दोषक्षयं विदुः ।
त्यक्तदोषोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयाद्धेत्वसंभवात् ।।10।।
रागद्वा द्वेषाद्वा मोहाद्वा वाक्यमुच्यते ह्यनृतम् ।
यस्य तु नैते दोषास्तस्यानृतकारणं नास्ति ।। ध. **3/2/12**

शास्त्र आगम है ।[174]

गुरु- सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन गुणों के द्वारा जो बड़े बन चुके है उनको गुरु कहते हैं । अर्थात् आचार्य, उपाध्याय और साधु से तीनों परमेष्ठी गुरु कहलाते हैं ।[175]

पाँच महाव्रतधारी, मद का मंथन करने वाले तथा क्रोध, लोभ व भय को त्यागने वाले गुरु कहे जाते हैं ।[176]

शिष्य के दोषों का निग्रह करने वाला कठोर गुरु ही गुरु है - जो जिसका हित करना चाहता है वह उसको हित के कार्य में बलात् प्रवृत्त करता है । जिस प्रकार हित करने वाली माता अपने रोते हुए भी बालक का मुँह फाड़कर उसे घी पिलाती है उसी प्रकार आचार्य भी मायाचार धारण करने वाले क्षपक को जबरदस्ती दोषों की आलोचना करने के लिए बाध्य करते है । तब वह दोष कहता है जिससे कि उसका कल्याण होता है, वैसे ही जिस प्रकार कड़वी औषधी पीने के अनन्तर रोगी का कल्याण होता है । लातों से शिष्यों को ताड़ते हुए भी जो शिष्य को दोषों से अलिप्त रखता है वही गुरु हित करने वाला समझना चाहिए । जो पुरुष आत्महित के साथ-साथ, कटु व कठोर शब्द बोलकर भी परहित साधते हैं ऐसे गुरु जगत् में अतिशय दुर्लभ समझने चाहिए ।[177]

धर्म - ऐसे गुरु जो प्राणियों को संसार के दु:खों से उठाकर उत्तम सुख (वीतराग सुख) में धारण करे (पहुँचावें) उसे धर्म कहते हैं वह धर्म कर्मों का विनाशक हैं तथा समीचीन हैं ।[178]

---

174. *आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्यमदृष्टेष्टविरोधकम् ।*
तत्त्वोपदेशकृत्सर्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ र. क. श्रा. **9**

175. *सुस्सूसगा गुरूणं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैः, गुणैर्गुरुतया गुरव इत्युच्यन्ते आचार्यो-पाध्यायसाधवः ।* भ.आ./वि.टी. **302**

176. *पञ्चमहाव्रतकलितो मदमथनः क्रोधलोभभयत्यक्तः ।*
एष गुरुरिति भण्यते तस्माज्जानीहि उपदेशम् ॥ ज्ञा. सा. **5**

177. *पिल्लेदूण रडंतं पि जहा बालस्स मुहं विदारित्ता ।*
पज्जेइ घदं माया तस्सेव हिदं विचिंतंती ॥
तह आयरिओ वि अणुज्जस्स खवयस्स दोसणीहरणं ।
कुणदि हिदं से पच्छा होहिदि कडुओसहं वत्ति ॥
पाएण वि ताडिंतो स भद्दओ जत्थ सारणा अत्थि ॥
आदट्ठमेव जे चिंतेदुमुट्ठिदा जे परट्ठमवि लोगे ।
कडुय फरुसेहिं साहेंति ते हु अदिदुल्लहा लोए ॥ भ.आ. **481-483,485**

178. *देशयामि समीचीनं, धर्म-कर्मनिबर्हणम् ।*
संसारदुःखतः सत्त्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे ॥ र.क.श्रा.**2**

निश्चय से संसार में गिरते हुए आत्मा को जो धारण करे यानी रक्षा करे सो विशुद्ध ज्ञान-दर्शन लक्षण वाले निज-शुद्धात्मा की भावना स्वरूप धर्म है । व्यवहार नय से इन्द्र, चक्रवर्ती आदि के द्वारा जो वन्दने योग्य पद है उसमें पहुँचाने वाला साधन रूप उत्तम क्षमा आदि दस प्रकार का धर्म हैं ।[179]

गणधरादि आचार्य सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र को धर्म कहते हैं ।[180]

चारित्र ही धर्म है । जो धर्म है सो साम्य है और वह साम्य, मोह-क्षोभरहित (राग-द्वेष तथा मन, वचन, काय के योगों से रहित) आत्मा का परिणाम है ।[181]

रागादि दोषों से रहित तथा शुद्धात्मा की अनुभूति सहित निश्चय धर्म होता है ।[182] वह धर्म सात तत्त्वादि रूप होता हैं –

तत्त्व विचार - जो पदार्थ जिस रूप से अवस्थित है उसका उस रूप में होना यही यहाँ तत्त्व शब्द का अर्थ है ।[183] तत्त्व, परमार्थ, द्रव्यस्वभाव, परमपरम्, ध्येय, शुद्ध और परम ये सब शब्द एकार्थवाची हैं ।[184]

तत्त्व के भेद - तत्त्व सात होते हैं - जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ।[185] जीव- जिसमें चेतना पाई जाती है उसे जीव कहते हैं । अजीव- जिसमें चेतना नहीं पाई जाती हैं उसे अजीव कहते हैं । आस्रव - शुभ और अशुभ कर्मों के आने का द्वार रूप आस्रव है । बंध - आत्मा और कर्मप्रदेशों का परस्पर मिल जाना बंध है । संवर- आस्रव का रुकना संवर है । निर्जरा- कर्मों का एकदेश अलग होना निर्जरा हैं । मोक्ष- सब कर्मों का

---

179. *निश्चयेन संसारे पतन्तमात्मानं धरतीति विशुद्धज्ञान-दर्शन-लक्षण निजशुद्धात्म-भावनात्मको धर्मः, व्यवहारेण तत्साधनार्थं देवेन्द्रनरेन्द्रादिवन्द्यपदे धरतीत्युत्तमक्षमादि-दश-प्रकारो धर्मः ।* द्र. सं. / टी. **35**

180. *सद्दृष्टिज्ञानवृतानि, धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।* र. क. श्रा. **3**

181. *चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो ।*
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ।। प्र. सा. **7**

182. *रागादिदोषरहितः शुद्धात्मानुभूतिसहितो निश्चयधर्मः ।* पं.का./ता.वृ.टी.**85**

183. *यथावस्थितस्तथा तस्य भवनमित्यर्थः ।* स.सि., टी. **1/2**

184. *तच्चं तह परमट्ठंदव्वसहावं तहेव परमपरं ।*
धेयं सुद्धं परमं एयट्ठा हुंति अभिहाणा ।। न. च. प्रा. **4**

185. *जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ।* त. सू. **1/4**

आत्मा से अलग हो जाना मोक्ष है ।[186] इन सात तत्त्वों में पुण्य और पाप को मिला देने से नव पदार्थ हो जाते हैं । पुण्य - जो आत्मा को पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होता है वह पुण्य हैं ।[187] पाप - जो आत्मा को शुभ से बचाता है वह पाप है ।[188]

यहाँ जीव और अजीव ये दो मूल भाव या तत्त्व हैं तथा उनमें संसार और मोक्ष के प्रतिपादक अथवा कर्मों के संयोग-वियोग के प्रतिपादक कारणों को जोड़ने पर पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष इस प्रकार नव-पदार्थ हैं ।[189]

द्रव्य-विचार - जो गुणों के द्वारा प्राप्त किया गया था अथवा गुणों को प्राप्त हुआ था अथवा जो गुणों के द्वारा प्राप्त किया जायेगा वा गुणों को प्राप्त होगा उसे द्रव्य कहते हैं । जो यथायोग्य अपनी-अपनी पर्यायों के द्वारा प्राप्त होते हैं या पर्यायों को प्राप्त होते हैं वे द्रव्य कहलाते हैं ।[190] जो 'सत्' लक्षण वाला तथा उत्पाद, व्यय व धौव्य युक्त है उसे द्रव्य कहते हैं ।[191]

द्रव्य के भेद - द्रव्य के छह भेद हैं-जीव, पुद्गल,धर्म,अधर्म, आकाश और काल ।[192]

जीवद्रव्य - तीनों कालों में इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास इन चारों प्राणों को जो धारण करता है वह व्यवहार से जीव है । निश्चय से जिसके चेतना है वह जीव हैं ।[193]

पुद्गलद्रव्य - जिसका पूरण-गलन स्वभाव है वह पुद्गल-द्रव्य हैं ।[194]

---

186. *चेतना लक्षणो जीवः । तद्विपर्ययलक्षणोऽजीवः । शुभाशुभकर्मागमद्वाररूप आस्रवः। आत्मकर्मणोरन्योऽन्यप्रदेशानुप्रवेशात्मको बन्धः । आस्रवनिरोधलक्षणः संवरः । एकदेशकर्मसंक्षयलक्षणा निर्जरा । कृत्स्नकर्मवियोगलक्षणो मोक्षः ।*
स. सि., टी. **1/4**

187. *पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम् ।* स. सि., टी **6/3**

188. *पाति रक्षति आत्मानं शुभादिति पापम् ।* स. सि., टी **6/3**

189. *जीवाजीवो भावा पुण्णं पावं च आसवं तेसिं ।*
संवरणिज्जरबंधो मोक्खो य हवंति ते अट्ठा ।। पं का. **108**

190. *यथास्वं पर्यायैर्द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि इति द्रव्याणि ।* स.सि., टी. **5/2**

191. *दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।* पं. का. **10**

192. *एदे कालागासा धम्माधम्मा य पुग्गला जीवा । लब्भंति दव्वसण्णं ।* पं. का. **102**

193. *तिक्काले चदुपाणा इन्द्रियबलमाउआणपाणो य ।*
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ।। द्र.सं.**3**

194. *पूरण-गलनस्वभावत्वात्पुद्गल इत्युच्यते ।।* द्र.सं.,टी. **15**

धर्म-द्रव्य - गमन-क्रिया से परिणत पुद्गल और जीवों को गमन में सहकारी धर्म-द्रव्य है। जैसे-मछलियों को गमन में जल सहकारी है। गमन न करते हुए (ठहरे हुए) पुद्गलों व जीवों को धर्म द्रव्य गमन नहीं कराता।[195]

अधर्मद्रव्य- ठहरे हुए पुद्गल और जीवों को ठहरने में सहकारी कारण अधर्मद्रव्य है। जैसे-छाया यात्रियों को ठहरने में सहकारी है। गमन करते हुए जीवों तथा पद्गुलों को अधर्मद्रव्य नहीं ठहराता।[196]

आकाशद्रव्य - जो जीव आदि द्रव्यों को आकाश देता है वह आकाशद्रव्य है।[197]

कालद्रव्य - जो द्रव्यों के परिवर्तन में सहायक है तथा परिणामादि लक्षण वाला है, वह व्यवहारकाल है। 'वर्तना' लक्षण वाला निश्चय काल है।[198]

अस्तिकाय का लक्षण - काल-द्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्यों को जिन-आगम में अस्तिकाय कहा गया है। क्योंकि उनमें जो बहुप्रदेशीपना है वही कायत्व है।[199] काल द्रव्य के बिना शेष पाँच द्रव्य अस्तिकाय जानने चाहिए। 'विद्यमान हैं' इसलिए जिनेन्द्र देव के इनको 'अस्ति' कहा है और 'ये शरीर के समान बहुप्रदेशीय हैं' इसलिए इनको 'काय' कहा है। अस्ति तथा काय दोनों को मिलाने से अस्तिकाय बनता है।[200] कालद्रव्य सदा अणुरूप रहने से अनस्तिकाय कहलाता है।

व्यवहार सम्यग्दर्शन - 'प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य की प्रकटता ही जिसका लक्षण है उसको व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न.- इस प्रकार सम्यक्त्व का लक्षण मान लेने पर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान

---

195. *गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।*
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई॥ द्र. सं. **17**

196. *ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाणठाणसहयारी।*
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई॥ द्र. सं. **18**

197. *अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं।* द्र. सं. **19**

198. *दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो।*
परिणामादिलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो॥ द्र. सं. **21**

199. *एदे छद्दव्वाणि य कालं मोत्तूण अत्थिकाया त्ति।*
णिद्दिट्ठा जिणसमए काया हु बहुप्पदेसत्तं॥ नि. सा. **34**

200. *उत्तं कालविजुत्तं णायव्वा पंच अत्थिकाया दु॥*
संति जदो तेणेदे अत्थित्ति भणंति जिणवरा जह्मा।
काया इव बहुदेसा तह्मा काया य अत्थिकाया य॥ द्र. सं. **23, 24**

का अभाव हो जायेगा ?

उत्तर - यह कहना शुद्धनिश्चय नय का आश्रय करने पर ही सत्य कहा जा सकता है अथवा 'तत्त्वार्थ के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं' इसका अर्थ यह है कि आप्त, आगम और पदार्थ को तत्त्वार्थ कहते हैं और इनके विषय में श्रद्धान् अर्थात् अनुरक्ति करने को सम्यग्दर्शन कहते हैं । यहाँ पर सम्यग्दर्शन लक्ष्य है तथा आप्त, आगम और पदार्थ का श्रद्धान लक्षण है ।

प्रश्न.- पहले कहे हुए (प्रशमादि की अभिव्यक्ति रूप) सम्यक्त्व के लक्षण के साथ इस लक्षण का विरोध क्यों न माना जाए ?

उत्तर - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि शुद्ध और अशुद्ध नय की अपेक्षा से ये दोनों लक्षण कहे गये हैं । अर्थात् पूर्वोक्त लक्षण शुद्ध नय की अपेक्षा से है और यह तत्त्वार्थ-श्रद्धान रूप लक्षण अशुद्ध नय की अपेक्षा से है अथवा 'तत्त्वरुचि को सम्यक्त्व कहते हैं' यह लक्षण अशुद्धतर नय की अपेक्षा जानना चाहिए ।[201]

श्रद्धान आदि सब आत्मा के परिणाम हैं - मोहनीय कर्म की प्रकृतियों में भी सम्यक्त्व नाम की कर्मप्रकृति है और निर्देश, स्वामित्व आदि सूत्र के विवरण से भी ज्ञात होता है कि यहाँ सम्यक्त्व कर्म-प्रकृति का सम्यग्दर्शन से ग्रहण है । अत:सम्यक्त्व को कर्म-पुद्गल रूप मानना चाहिए ? ऐसी शंका नहीं करना चाहिए क्योंकि यहाँ मोक्ष के कारणों का प्रकरण है, अत: उपादानभूत आत्मपरिणाम ही विवक्षित हैं ।[202]

आगमिक सराग-वीतराग सम्यग्दर्शन

सराग सम्यग्दर्शन - प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्य आदि की अभिव्यक्ति सराग सम्यग्दर्शन है ।[203]

---

201. *प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्यक्त्वम् । सत्येवमसंयतसम्यग्दृष्टि-गुणस्याभावः स्यादिति चेत्सत्यमेतत् शुद्धनये समाश्रीयमाणे अथवा तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् । अस्य गमनिकोच्यते, आप्तागमपदार्थस्तत्त्वार्थस्तेषु श्रद्धानमनुरक्तता सम्यग्दर्शनमिति लक्ष्यनिर्देशः । कथं पौरस्त्येन लक्षणेनास्य न विरोधश्चेन्नैष दोषः, शुद्धाशुद्धसमाश्रयणात् । अथवा तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वम् अशुद्धतरनयसमाश्रयणात् ।*
ध. **1/152**

202. *स्यादेतत्-वक्ष्यमाणनिर्देशादिसूत्रविवरणात् पुद्गलद्रव्यस्य संप्रत्ययः प्राप्नोतिः । तन्न किं कारणम् ? आत्मपरिणामेऽपि तदुपपत्तेः । किं तत्त्वार्थश्रद्धानम् ? आत्मपरिणामः । कस्य ? आत्मन इत्येवमादि ।* रा. वा. **1/2**

203. *प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याद्यभिव्यक्तिलक्षणं प्रथमम् ।* स. सि. टी. **1/2**

प्रशम - रागादि का अनुद्रेक (शान्ति) प्रशम है ।[204]

संवेग - संसार से भयभीत होना संवेग है ।[205] अथवा धर्म में, धर्म के फल में और सम्यग्दर्शन में जो हर्ष होता है वह संवेग है ।[206]

अनुकंपा - प्राणीमात्र में मैत्रीभाव रखना अनुकंपा है ।[207]

आस्तिक्य - जीवादि पदार्थों के स्वरूप में 'अस्ति' बुद्धि होना आस्तिक्य है ।[208]

सराग व वीतराग दोनों ही अवस्थाओं में सम्यग्दर्शन संभव है । सराग में तो प्रशमादि लक्षणों के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति होती है और वीतराग में वह केवल चित्त-विशुद्धि द्वारा लक्षित होता है । प्रशमादि गुण एक-एक करके या समुदित रूप से अपनी आत्मा में तो स्वसंवेदनगम्य हैं और दूसरों में काय व वचन व्यवहाररूप विशेष ज्ञापक लिंगों द्वारा अनुमानगम्य हैं । इन प्रशमादि गुणों से सम्यग्दर्शन जान लिया जाता है । सम्यग्दर्शन के अभाव में वे प्रशमादि मिथ्यादृष्टि जीवों में संभव नहीं हैं, यदि वहाँ इनका होना माना जायेगा तो वहाँ मिथ्यादृष्टिपना संभव नहीं हो सकेगा ।

प्रश्न.- किन्हीं-किन्ही मिथ्यादृष्टियों में भी क्रोधादि का तीव्र उदय नही पाया जाता हैं, इसलिए सम्यग्दर्शन की सिद्धि में दिया गया उपरोक्त प्रशमादि गुणों वाला हेतु व्यभिचारी है ?

उत्तर - नहीं है, क्योंकि उनके स्वमान्य एकान्त मतों में अनन्तानुबंधी जन्य मान कषाय का तीव्र भाव पाया जाता है । आत्मस्वरूप व अनेकान्तमत में उन्हें द्वेष का होना अवश्यंभावी है तथा पृथिवीकायिक आदिकों की हिंसा करना भी उनमें पाया जाता है ।

प्रश्न.- जिस प्रकार सराग सम्यग्दृष्टियों में उसकी अभिव्यक्ति अनुमानगम्य है, उसी प्रकार वीतराग सम्यग्दृष्टियों में भी उन्हीं के द्वारा अनुमानगम्य क्यों नही ?

उत्तर - नहीं, क्योंकि वीतरागियों का तत्त्वार्थश्रद्धान अपने में आत्मविशुद्धि रूप होता है । सकल मोह के अभाव में वहाँ समारोप का अर्थात् संशय आदि का अवकाश न होने से, उसका स्वसंवेदन से ही निश्चय होता है, क्योंकि वह विशुद्धि अनुमान का विषय

---

204. *रागादीनामनुद्रेकः प्रशमः ।* रा. वा. **1/2**

205. *संसाराद्भीरुता संवेगः ।* रा. वा. **1/2**

206. *धम्मे य धम्मफलम्हि दंसणे य हरिसो य हुंति संवेगा ।* वृ.द.सं.,टी. **35**

207. *सर्वप्राणिषु मैत्री अनुकम्पा ।* रा. वा. **1/2**

208. *जीवादयोऽर्था यथास्वंभावैः सन्तीति मतिरास्तिक्यम् ।* रा. वा. **1/2**

नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि वीतरागी जनों में, सम्यग्दर्शन के ज्ञापक प्रशमादि गुणों का तथा वचन व काय व्यवहार रूप विशेषज्ञापक लिङ्गों का सद्भाव होते हुए भी, वे अतिसूक्ष्म होने के कारण छद्मस्थों के गोचर नहीं हो पाते, क्योंकि छद्मस्थों के पास उनको जानने का कोई साधन नहीं है। इसलिए वे गुण व लिङ्ग वीतराग सम्यग्दर्शन के अनुमान के उपाय नहीं है।

प्रश्न.- सातवें से लेकर दसवें गुणस्थान पर्यंत के अप्रमत्त सराग गुणस्थानों में सम्यग्दर्शन का अनुमान कैसे किया जा सकता है, क्योंकि उनमें उसके निर्णय के उपायभूत, काय व वचन व्यवहार रूप विशेष ज्ञापक लिंङ्गों का अभाव है ?

उत्तर - तुम हमारे अभिप्राय को नहीं समझे। सर्व ही सराग जीवों के सम्यग्दर्शन का अनुमान केवल इन गुणों व लिंगों पर से ही होता हो, ऐसा नियम नहीं किया गया है। बल्कि यथासंभव वीतराग व सराग दोनों में ही सम्यग्दर्शन की अनुमेयता आत्मविशुद्धि से होती है, ऐसा हमारा अभिप्राय है।[209]

प्रशमादि ज्ञानरूप नहीं बल्कि सम्यक्त्व के कार्य हैं।

प्रश्न.- सम्यग्ज्ञान ही वास्तव में सम्यग्दर्शन है ?

उत्तर - प्रशम आदिक विशेष कार्यों से दर्शन व ज्ञान में भेद है।

प्रश्न.- प्रशमादि क्रिया-विशेष तो सम्यग्ज्ञान के कार्य है, अत: वे सम्यग्ज्ञान के

---

209. *सरागे वीतरागे च तस्य संभवतोऽञ्जसा।*
प्रशमादेरभिव्यक्तः शुद्धिमात्र च चेतसः ॥12॥
एतानि प्रत्येकं समुदितानि वा स्वस्मिन् स्वसंविदितानि, परत्र कायवाग्व्यवहारविशेष-लिंगानुमितानि सरागसम्यग्दर्शनं ज्ञापयन्ति, तद्भावे मिथ्यादृष्टिष्वसंभवित्वात्, संभवे वा मिथ्यात्वायोगात्। मिथ्यादृशामपि केषाञ्चित्क्रोधाद्यनुद्रेकदर्शनात्, प्रशमोऽनैकान्तिक इति चेन्न, तेषामपि सर्वथैकान्तेऽनन्तानुबन्धिनो मानस्योदयात्। स्वात्मनि चानेकान्तात्मनि द्वेषोदयस्यावश्यंभावात्, पृथिवीकायिकादिषु प्राणिषु हननदर्शनाच्च। नन्वेवं यथा सरागेषु तत्त्वार्थश्रद्धानं प्रशमादिभिरनुमीयते तथा वीतरागेष्वपि, ततैः किं नानुमीयते ? इति चेन्न, तस्य स्वस्मिन्नात्मविशुद्धिमात्रत्वात् सकलमोहाभावे समारोपानवतारात् स्वसंवेदनादेव निश्चयोपपत्तेरनुमेयत्वाभावः। परत्र तु प्रशमादीनां तल्लिङ्गानां सतामपि निश्चयोपायानां कायादिव्यवहार-विशेषाणामपि तदुपायानामभावात्। कथमिदानीमप्रमत्तादिषु सूक्ष्मसाम्परायान्तेषु सद्दर्शनं प्रशमादेरनुमातुं शक्यम् ? तन्निर्णयोपायानां कायादिव्यवहारविशेषाणामभावादेव।... सोऽप्यभिहितानभिज्ञः, सर्वेषु सरागेषु सद्दर्शनं प्रशमादिभिरनुमीयत इत्यनभिधानात्। यथासंभवं सरागेषु वीतरागेषु च सद्दर्शनस्य तदनुमेयत्वमात्मविशुद्धिमात्रत्वं चेत्यभिहितत्वात्। श्लो.वा. **2/2/29-34, 35-44-45**

ही ज्ञापक होंगे ?

उत्तर - नहीं, क्योंकि ज्ञान का फल तो अज्ञान की निवृत्ति है ।

प्रश्न - ज्ञान का अव्यवहित फल तो अज्ञान-निवृत्ति है, किन्तु उसका परंपरा-फल प्रशम आदि है, जैसे कि हेय पदार्थ में त्याग-बुद्धि होना उसका परंपरा फल है ?

उत्तर - यदि ऐसा है तो उस त्याग बुद्धि के समान ये प्रशमादि भी ज्ञान के उत्तरकाल में ही अनुभव में आने चाहिए । परंतु ऐसा है नही, क्योंकि ज्ञान के समकाल में ही उनका अनुभव देखा जाता है ।

प्रश्न. - तब तो सम्यग्दर्शन के समकाल में ही अनुभव गोचर होने के कारण वे सम्यग्दर्शन के भी फल न हो सकेंगे ?

उत्तर - नहीं, सम्यक्त्व के अभिन्न फलस्वरूप होने के कारण पशमादि की समकाल वृत्ति में कोई विरोध नहीं है । इसलिए दर्शन के कार्य होने से वे प्रशमादि सम्यग्दर्शन के ज्ञापक हेतु हैं ।[210]

प्रशमादि कथञ्चित् सम्यग्दर्शन के भी ज्ञापक हैं

सम्यग्ज्ञान रूप साध्य के साथ रहने वाले सम्यग्दर्शन के कार्य हो जाने से वे प्रशमादिक सम्यग्ज्ञान के भी ज्ञापक हेतु हो जाते हैं ।[211]

इस तरह औपशमिक व क्षायोपशमिक सम्यक्त्व सराग सम्यग्दर्शन है ।[212] प्रशस्त राग सहित जीवों का सम्यक्त्व सराग सम्यक्त्व है ।[213]

---

210. *सम्यग्ज्ञानमेव हि सम्यग्दर्शनमितिकेचिद्विप्रवदन्ते, तान् प्रति ज्ञानात् भेदेन दर्शनं प्रशमदिभिः कार्यविशेषैः प्रकाश्यते । ज्ञानकार्यत्वात्तेषां न तत्प्रकाशकत्वमिति चेन्न, अज्ञाननिवृत्तिफलत्वात् ज्ञानस्य । साक्षादज्ञाननिवृत्तिर्ज्ञानस्य फलं, परम्परया प्रशमादयो हानादिबुद्धिवदिति चेत्, तर्हि हानादिबुद्धिवदेव ज्ञानादुत्तरकालं प्रशमादयोऽ-नुभूयेरन्, न चैवं ज्ञानसमकालं प्रशमाद्यनुभवभवनात् । सम्यग्दर्शनसमसमयमनुभूयमा-नत्वात् प्रशमादेस्तत्फलत्वमपि माभूत् इति चेन्न, तस्य तदभिन्नफलत्वोपगमात्तत्सम-समयवृत्तित्वाविरोधात् ततो दर्शनकार्यत्वाद्दर्शनस्य ज्ञापकाः प्रशमादयः ।* श्लो. वा. **2/2/39-41**

211. *प्रशमादयः सहचरकार्यत्वात्तु ज्ञानस्येत्यनवद्यम् ।* श्लो.वा. **2/2/41**

212. *सरागपरं द्वयम् ।* अ. ग. श्रा. **2/65**

213. *प्रशस्तरागसहितानां श्रद्धानं सरागसम्यग्दर्शनम् ।* भ.आ./वि.टी. **50**

वीतराग सम्यग्दर्शन

आत्मा की विशुद्धि मात्र वीतराग सम्यग्दर्शन है ।[214] क्षायिक सम्यक्त्व वीतराग सम्यक्त्व है ।[215] मिथ्यात्वादि सातों प्रकृतियों का आत्यन्तिक क्षय हो जाने पर जो आत्मविशुद्धि प्रगट होती है वह वीतराग सम्यक्त्व है ।[216] प्रशस्त व अप्रशस्त दोनों प्रकार के राग से रहित क्षीणमोह वीतरागियों का सम्यक्त्व वीतराग सम्यक्त्व है ।[217]

विशेषार्थ - आगमिक सराग वा वीतराग सम्यग्दर्शन के स्वामियों के विषय में जैनाचार्यों के दो मत हैं - **1.** पू.अकलंकदेव व अमितगति आदि आचार्यों के अनुसार दर्शनमोह की तीन व चारित्रमोह की चार इन सात प्रकृतियों के पूर्णतः क्षय हो जाने पर जो क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है वह वीतराग सम्यग्दर्शन है । शेष दो औपशमिक व क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन सराग सम्यग्दर्शन हैं । **2.** आचार्यश्री विद्यानंद जी एवं अपराजित सूरी आदि आचार्यों के अनुसार संपूर्ण मोहनीय कर्म के क्षय हो जाने के पश्चात् ही **12, 13, 14** वें गुणस्थानवर्ती जीवों का सम्यग्दर्शन वीतराग सम्यग्दर्शन है । शेष नीचे के **4-10** गुणस्थान तक के जीवों का सम्यग्दर्शन सराग सम्यग्दर्शन है । अतः इन दोनों भेदों को यथायोग्य दृष्टि से समझने का प्रयास करना चाहिए । आगम ग्रंथ श्री तत्त्वार्थराजवार्तिक में अकलंक देव ने कहा हैं कि (आगमिक) वीतराग सम्यग्दर्शन साधन व साध्य रूप है तथा (आगमिक) सराग सम्यग्दर्शन साधन ही है । साधनपूर्वक ही साध्य की सिद्धि होती है ।

अतः आगम की भाषा में प्रथम सराग सम्यग्दर्शन होता है तत्पश्चात् वीतराग सम्यग्दर्शन होता है । यह वीतराग सम्यग्दर्शन पूर्व में साधन रूप होता है पश्चात् साध्य रूप होता है । पर यह सब कथन आगम-भाषा परक ही है, इसे आध्यात्मिक नही समझना चाहिए और न ही इसे आध्यात्मिक (वीतराग) सम्यग्दर्शन के साथ जोड़ना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से संशय ही नही किन्तु विपरीत धारणा बन सकती है और भोले प्राणी मिथ्यात्व के शिकार बन सकते हैं । भवभीरु मुमुक्षुओं को दोनों के अन्तर की गहराई को समझना चाहिए कि आगमिक वीतराग सम्यग्दर्शन, आध्यात्मिक वीतराग नहीं है, भले ही दोनों के एक नाम हों पर स्वामी आदि में भेद हैं ।

सम्यग्दर्शन के आज्ञा आदि दश भेदों के लक्षण

---

214. *आत्मविशुद्धिमात्रमितरत् ।* स. सि.,टी. **1/2**

215. *विरागं क्षायिकम् ।* अ.ग.श्रा. **2/65**

216. *सप्तानां कर्मप्रकृतीनाम् आत्यन्तिकेऽपगमे सत्यात्मविशुद्धिमात्रमितरद् वीतरागसम्यक्त्वमित्युच्यते ।* रा. वा. **1/2**

217. *रागद्वयरहितानां क्षीणमोहावरणानां वीतरागसम्यग्दर्शनम् ।* भ.आ.,वि.टी.**50**

इनके लक्षण तत्त्वार्थराजवार्तिक एवं आत्मानुशासन के अनुसार क्रमशः इस प्रकार हैं ।[218]

1. आज्ञासम्यक्त्व - भगवान् अर्हन्त सर्वज्ञ की आज्ञामात्र को मानकर सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए जीव आज्ञा रुचि हैं। दर्शनमोह के उपशान्त होने से ग्रंथ श्रवण के बिना केवल वीतराग भगवान् की आज्ञा से ही जो तत्त्वश्रद्धान उत्पन्न होता है वह आज्ञासम्यक्त्व है।

2. मार्गसम्यक्त्व - अपरिग्रही मोक्षमार्ग के श्रवणमात्र से सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए जीव मार्गरुचि हैं। दर्शनमोह का उपशम होने से ग्रंथ-श्रवण के बिना जो कल्याणकारी मोक्षमार्ग का श्रद्धान होता है उसे मार्गसम्यग्दर्शन कहते हैं।

3. उपदेशसम्यक्त्व - तीर्थंकर, बलदेव आदि के शुभचरित्र के उपदेश को सुनकर सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले उपदेशरुचि हैं। त्रेषठ शलाकापुरुषों के पुराण-वृत्तान्त के उपदेश से जो तत्त्वश्रद्धान उत्पन्न होता है उसे उपदेशसम्यग्दर्शन कहते हैं।

4. सूत्रसम्यक्त्व - दीक्षा आदि के निरूपक आचारांगादि सूत्रों के सुनने मात्र से जिन्हें सम्यग्दर्शन हुआ है वे सूत्ररूचि हैं। मुनि के चारित्रानुष्ठान को सूचित करने वाले आचारसूत्र को सुनकर जो तत्त्वार्थश्रद्धान होता है उसे सूत्र सम्यग्दर्शन कहा गया है।

5. बीजसम्यक्त्व - बीजपदों के ग्रहण पूर्वक सूक्ष्मार्थ तत्त्वार्थ श्रद्धान को प्राप्त करने वाले बीजरुचि हैं।

जिन जीवादि पदार्थों के समूह का अथवा गणितादि विषयों का ज्ञान दुर्लभ है उनका किन्हीं बीजपदों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने वाले भव्य जीव के जो दर्शन मोहनीय के असाधारण उपशमवश तत्त्वश्रद्धान होता है उसे बीज-सम्यग्दर्शन कहते हैं।

218.*अ) तत्र भगवदर्हत्सर्वज्ञप्रणीताज्ञामात्रनिमित्तश्रद्धाना आज्ञारुचयः । निःसंगमोक्ष-मार्गश्रवणमात्रजनितरुचयो मार्गरुचयः। तीर्थंकरबलदेवादिशुभचरितोपदेशहेतुश्रद्धाना उपदेशरुचयः । प्रव्रज्यामर्यादाप्ररूपणाचारसूत्रश्रवणमात्रसमुद्भूतसम्यग्दर्शनाः सूत्ररुचयः । बीजपदग्रहणपूर्वकसूक्ष्मार्थतत्त्वार्थश्रद्धाना बीजरुचयः । जीवादिप-दार्थसमाससम्बोधनसमुद्भूतश्रद्धानाः संक्षेपरुचयः । अंगपूर्वविषयजीवाद्यर्थविस्तार-प्रमाणनयादिनिरूपणोपलब्धश्रद्धाना विस्ताररुचयः। वचनविस्तारविरहितार्थग्रहण-जनितप्रसादा अर्थरुचयः। आचारादिद्वादशाङ्गभिनिविष्टश्रद्धाना अवगाढरुचयः । परमावधिकेवलज्ञानदर्शनप्रकाशितजीवाद्यर्थविषयात्मप्रसादाः परमावगाढरुचयः ।*

रा. वा. **3/36**

6. संक्षेपसम्यक्त्व - जीवादि पदार्थों के संक्षेप कथन से ही सम्यग्दर्शन को प्राप्त होने वाले संक्षेपरुचि हैं।

जो भव्य जीव पदार्थों के स्वरूप को संक्षेप से ही जान करके तत्त्वश्रद्धान को प्राप्त हुआ है उसके उस सम्यग्दर्शन को संक्षेपसम्यग्दर्शन कहा जाता है।

7. विस्तारसम्यक्त्व - अंग व पूर्व के विषय, प्रमाण, नय आदि के विस्तारपूर्वक कथन से जिन्हें सम्यग्दर्शन हुआ है वे विस्ताररुचि हैं। जो भव्य जीव बारह अंगों को सुनकर तत्त्वश्रद्धानी हो जाता है उसे विस्तारसम्यग्दर्शन से युक्त जानों।

8. अर्थसम्यक्त्व - वचन-विस्तार के बिना केवल अर्थ-ग्रहण से जिन्हें सम्यग्दर्शन हुआ है वे अर्थरुचि हैं। अंग तथा अंग-बाह्य आगमों के पढ़े बिना भी उनसे प्रतिपादित किसी पदार्थ के निमित्त से जो अर्थश्रद्धान होता है वह अर्थसम्यग्दर्शन कहलाता है।

9. अवगाढ़सम्यक्त्व - आचारांग आदि द्वादशांग में जिनका श्रद्धान अतिदृढ़ है वे अवगाढ़रुचि हैं। अंगों के साथ अंगबाह्य श्रुत का अवगाहन करके जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है उसे अवगाढ़सम्यग्दर्शन कहते हैं।

10. परमावगाढ़सम्यक्त्व - परमावधि या केवलज्ञान-दर्शन से प्रकाशित जीवादि पदार्थ विषयक प्रकाश से जिनकी आत्मा विशुद्ध है वे परमावगाढ़रुचि हैं। केवलज्ञान के द्वारा देखे गये पदार्थों के विषय में जो रुचि होती है वह परमावगाढ़-सम्यग्दर्शन कहलाता है।

ब) *आज्ञासम्यक्त्वमुक्तं यदुत विरुचितं वीतरागाज्ञयैव,*
त्यक्तग्रन्थप्रपञ्चं शिवममृतपथं श्रद्दधन्मोहशान्तेः।
मार्गश्रद्धानमाहुः पुरुषवरपुराणोपदेशोपजाता,
या संज्ञानागमाब्धिप्रसृतिभिरुपदेशादिरादेशि दृष्टिः॥
आकर्ण्याचारसूत्रं मुनिचरणविधेः सूचनं श्रद्दधानः,
सूक्तासौ सूत्रदृष्टिर्दुरधिगमगतेरर्थसार्थस्य बीजैः।
कैश्चिज्जातोपलब्धेरसमशमवशाद् बीजदृष्टिः पदार्थान्,
संक्षेपेणैव बुद्ध्वारुचिमुपगतवान् साधुः संक्षेपदृष्टिः॥
यः श्रुत्वा द्वादशाङ्गीं कृतरुचिरथ तं विद्धिः विस्तारदृष्टिं,
संजातार्थात्कुतश्चित्प्रवचनवचनान्यन्तरेणार्थदृष्टिः।
दृष्टिः साङ्गाङ्गबाह्यप्रवचनमवगाह्योत्थिता यावगाढा,
*कैवल्यालोकितार्थे रुचिरिह परमावगाढेति रूढा॥*आ.अनु. **12-14**

आज्ञा सम्यग्दर्शन की विशेषताएँ - जो व्यक्ति अर्हन्त आदि के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन की या आप्त, आगम व पदार्थ इन तीनों की श्रद्धा करता है और विशेष ज्ञान-शून्य होने के कारण केवल गुरु-नियोग से या अर्हंत की आज्ञा मानकर अतत्त्वों का भी श्रद्धान कर लेता है तो वह भी सम्यग्दृष्टि है, क्योंकि उसने आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया है।[219]

आध्यात्मिक व्यवहार (सराग) सम्यग्दर्शन

व्यवहारसम्यग्दर्शन - मिथ्यात्वोदयजनित, विपरीताभिनिवेश-रहित, पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य, जीवादि सात पदार्थ (तत्त्व) अथवा आस्रवादि नव पदार्थ, इनका जो श्रद्धान करना है वह व्यवहारसम्यग्दर्शन है ।[220]

हिंसादि-रहित धर्म, अठारह दोष रहित देव, निर्ग्रंथ-प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग व गुरु इनमें श्रद्धा होना सम्यग्दर्शन है ।[221]

आप्त, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा से जो सम्यक्त्व होता है वह व्यवहार सम्यक्त्व है ।[222]

शुद्ध जीव आदि तत्त्वार्थों का श्रद्धानरूप जो सरागसम्यक्त्व है, वह ही व्यवहारसम्यक्त्व जानना चाहिए ।[223]

प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य आदि की अभिव्यक्ति सराग सम्यक्त्व का लक्षण है । वह ही व्यवहारसम्यक्त्व है ।[224]

---

219. *यः अर्हदाद्युपदिष्टं प्रवचनं आप्तागमपदार्थत्रयं श्रद्दधाति रोचते, तेषु असद्भावं अतत्त्वमपि तस्य विशेषज्ञानशून्यत्वेन केवलगुरुनियोगात् अर्हदाद्याज्ञातः श्रद्दधाति सोऽपि सम्यग्दृष्टिरेव भवति तदाज्ञाया अनतिक्रमात् ।* गो.जी./जी.प्र.टी. **27**

220. *मिथ्यात्वोदयजनितविपरिताभिनिवेशरहितं श्रद्धानं । केषां सम्बन्धिः । पञ्चास्तिकाय-षड्द्रव्यविकल्परूपं जीवाजीवद्वयं जीवपुद्गलसंयोगपरिणामोत्पन्नास्रवादिपदार्थसप्तकं चेत्युक्त लक्षणानां भावानां जीवादिनवपदार्थानाम् । इदं तु नवपदार्थविषयभूतं व्यवहारसम्यक्त्वम् ।* पं.का./ता.वृ.टी. **107**

221. *हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे ।*
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं ।। मो. पा. **90**

222. *अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं ।* नि.सा. **5**

223. *शुद्धजीवादितत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं सरागसम्यक्त्वाभिधानं व्यवहारसम्यक्त्वं विज्ञेयम् ।* द्र.सं./टी. **41**

224. *प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सरागसम्यक्त्वं भण्यते । तदेव व्यवहारसम्यक्त्वमिति ।* प.प्र./टी. **2/17**

व्यवहार सम्यक्त्व, निश्चय का साधन है

प्रश्न.- व्यवहार सम्यक्त्व के व्याख्यान में निश्चय सम्यक्त्व का वर्णन क्यों किया जाता है ?

उत्तर - व्यवहार सम्यक्त्व से निश्चय सम्यक्त्व सिद्ध किया जाता है, इस साध्य-साधक भाव को बतलाने के लिए निश्चय सम्यक्त्व का वर्णन किया गया है ।[225]

आध्यात्मिक निश्चय (वीतराग) सम्यग्दर्शन

निश्चय सम्यग्दर्शन - शुद्धोपयोगरूप निश्चय रत्नत्रय की भावना से उत्पन्न परम आह्लादरूप सुखामृत रस का आस्वादन ही उपादेय है, इन्द्रियजन्य सुख आदि हेय हैं, ऐसी रुचि तथा जो वीतराग चारित्र के बिना नहीं होता, ऐसा जो वीतराग सम्यक्त्व है वह ही निश्चय सम्यक्त्व है ।[226]

विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव रूप निज परमात्मा में रुचिरूप निश्चय सम्यग्दर्शन है ।[227]

रागादिविकल्परहित चित्त-चमत्कार भावना से उत्पन्न मधुर रस के आस्वाद रूप सुख का धारक मैं हूँ, इस प्रकार निश्चय रूप सम्यग्दर्शन हैं ।[228]

वीतरागचारित्र के साधक अविनाभाव संबंधवाला वीतराग सम्यक्त्व नामक निश्चय सम्यक्त्व जानना चाहिए ।[229]

वीतराग सम्यक्त्व निज-शुद्धात्मानुभूति लक्षण वाला है और वीतराग चारित्र के साथ अविनाभावी है । वह ही निश्चय सम्यक्त्व है ।[230]

---

225. *अत्र व्यवहारसम्यक्त्वमध्ये निश्चयसम्यक्त्वं किमर्थं व्याख्यातमिति चेद् व्यवहारसम्यक्त्वेन निश्चयसम्यक्त्वं साध्यत इति साध्यसाधकभावज्ञापनार्थमिति ।* द. सं.,टी. **41**

226. *शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रयभावनोत्पन्नपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसास्वादन-मेवोपादेयमिन्द्रियसुखादिकं च हेयमिति रुचिरूपंवीतरागचारित्राविनाभूतं वीतरागसम्यक्त्वाभिधानं निश्चयसम्यक्त्वं च ज्ञातव्यमिति ।* द्र.सं.टी. **41**

227. *विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजपरमात्मनि यद्रुचिरूपं सम्यग्दर्शनम् ।* स.सा./ता.वृ.टी. **2**

228. *रागादिविकल्पोपाधिरहितचिच्चमत्कारभावोत्पन्नमधुररसास्वादसुखोऽहमिति निश्चयरूपं सम्यग्दर्शनम् ।* द्र. सं. टी. **40**

229. *वीतरागचारित्रविनाभूतं वीतरागसम्यक्त्वाभिधानं निश्चयसम्यक्त्वं च ज्ञातव्यमिति ।* द्र.सं.,टी.**41**

230. *वीतरागसम्यक्त्वं निजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणं वीतरागचारित्राविनाभूतम् ।* प.प्र., टी. **2/17**

त्रिगुप्तिरूप अवस्था ही वीतराग सम्यक्त्व का लक्षण है ।[231]

रागादि से भिन्न यह जो स्वात्मा से उत्पन्न सुख रूप स्वभाव है वही परमात्म तत्त्व है। वही परमात्म तत्त्व सर्व प्रकार से उपादेय है, ऐसी रुचि निश्चय सम्यक्त्व है ।[232]

निश्चय-व्यवहार सम्यक्त्व का समन्वय

प्रश्न.- 'निज शुद्धात्मा ही उपादेय है' ऐसी रुचि रूप निश्चय सम्यक्त्व होता है, ऐसा पहले कई बार आपने कहा है और अब 'वीतराग चारित्र का अविनाभूत निश्चय सम्यक्त्व है' ऐसा कह रहे हैं । दोनों में पूर्वापर-विरोध हैं । वह ऐसे कि 'निज शुद्धात्मा ही उपादेय है' ऐसा रुचि रूप निश्चय सम्यक्त्व गृहस्थावस्था में तीर्थंकर परमदेव तथा भरत, सगर, राम, पाण्डव आदि को रहता है परंतु उनको वीतराग चारित्र नहीं होता, इसलिए परस्पर-विरोध है । यदि 'होता है' ऐसा मानें तो उनके असंयतपना कैसे हो सकता है ?

उत्तर - उनके शुद्धात्मा की उपादेयता की भावना रूप निश्चय सम्यक्त्व रहता है, किन्तु चारित्र मोह के उदय के कारण स्थिरता नहीं है, व्रत की प्रतिज्ञा भंग हो जाती है, इस कारण उनको असंयत कहा जाता है । शुद्धात्म भावना से च्युत होकर शुभराग के योग से वे सराग सम्यग्दृष्टि होते हैं । उनके सम्यक्त्व को जो निश्चय सम्यक्त्व कहा गया है, उसका कारण यह है कि वे वीतरागचारित्र के अविनाभावभूत निश्चय सम्यक्त्व के परंपरा से साधक हैं । वस्तुतः वह सम्यक्त्व भी सराग सम्यक्त्व नाम वाला व्यवहार सम्यक्त्व ही है ।[233]

---

231. *त्रिगुप्तावस्थालक्षणवीतरागसम्यक्त्वप्रस्तावे ।* द्र. सं.,टी. **41**

232. *रागादिभ्यो भिन्नोऽयं स्वात्मोत्थसुखस्वभावः परमात्मेति भेदज्ञानं तथा स एव सर्वप्रकारोपादेय इति रुचिरूपं सम्यक्त्वम् ।* प्र.सा.,ता.वृ. **5**

233. *अत्राह प्रभाकरभट्टः । निजशुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपं निश्चयसम्यक्त्वं भवतीति बहुधा व्याख्यातं पूर्वं भवद्भिः, इदानीं पुनः वीतरागचारित्राविनाभूतं निश्चयसम्यक्त्वं व्याख्यातमिति पूर्वापरविरोधः कस्मादिति चेत् । निजशुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपम् निश्चयसम्यक्त्वं गृहस्थावस्थायां तीर्थंकरपरमदेवभरतसगररामपाण्डवादीनां विद्यते, न च तेषां वीतरागचारित्रमस्तीति परस्परविरोधः अस्ति चेतर्हि तेषामसंयतत्वं कथमिति पूर्वपक्षः । तत्र परिहारमाह । तेषां शुद्धात्मोपादेयभावनारूपम् निश्चयसम्यक्त्वं विद्यते परं किन्तु चारित्रमोहोदयेन स्थिरता नास्ति व्रतप्रतिज्ञाभंगो भवतीति तेन कारणेनासंयता वा भण्यन्ते । शुद्धात्मभावभावनाच्युताः सन्तः भरतादयो.... शुभरागयोगात् सराग-सम्यग्दृष्टयो भवन्ति । या पुनस्तेषां सम्यक्त्वस्य निश्चयसम्यक्त्वसंज्ञा वीतरागचारित्राविनाभूतस्य निश्चयसम्यक्त्वस्य परम्परया साधकत्वादिति । वस्तुवृत्त्या तु तत्सम्यक्त्वं सरागसम्यक्त्वाख्यं व्यवहारसम्यक्त्वमेवेति भावार्थः ।*

प.प्र., टी.**2/17/132**

विशेषार्थ - आध्यात्मिक ग्रंथों में त्रिगुप्तिगुप्त मुनिराजों को ही वीतराग सम्यग्दृष्टि कहा है।[क] तथा इसे वीतरागचारित्र का अविनाभावी माना है।[ख] यह सम्यगुदर्शन सातवें गुणस्थान से प्रारंभ होता है, क्योंकि कहा भी है कि चतुर्थ, पंचम, षष्ठ गुणस्थानों में सराग सम्यक्त्व के साथ अन्यथानुपपत्ति है। इस न्याय के अनुसार उक्त गुणस्थानों में सराग सम्यग्दर्शन ही पाया जाता है अन्यथा दूसरा वीतराग सम्यगदर्शन की अनुपपत्ति है तथा अप्रमत्त अर्थात् सातवें गुणस्थान को आदि लेकर आगे के गुणस्थानों में आध्यात्मिक वीतराग सम्यग्दर्शन ही पाया जाता है अन्यथा सराग सम्यग्दर्शन की इन गुणस्थानों में अनुपपत्ति है अर्थात् अभाव है।[ग] परमात्मप्रकाश की टीका में आगम और अध्यात्म का सामञ्जस्य बैठाते हुए कहा है कि राम, पाण्डवादि के गृहस्थावस्था में शुद्धात्मा उपादेय है ऐसी भावना रूप निश्चय सम्यक्त्व होता है, लेकिन वीतराग चारित्र के अविनाभाव रूप चारित्र के अभाव में 'वस्तुवृत्ती की अपेक्षा' वह सम्यक्त्व, सराग सम्यक्त्व नामक व्यवहार सम्यग्दर्शन ही है।[घ] ऐसा सर्वत्र जानना चाहिए।

किन्हीं-किन्हीं आचार्यों ने सराग सम्यग्दर्शन को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा है।[ङ] वीतराग सम्यग्दर्शन को निश्चय सम्यग्दर्शन कहा है।[च] ब्रह्मदेव सूरी ने इन दोनों में साध्य-साधन भाव माना है अर्थात् व्यवहार या सराग सम्यग्दर्शन को साधन तथा निश्चय या वीतराग सम्यग्दर्शन को साध्य रूप माना है।[छ] तात्पर्य यह है कि साधनपूर्वक ही साध्य की सिद्धि होती है अर्थात् व्यवहार या सराग सम्यग्दर्शन पूर्वक ही निश्चय या वीतराग सम्यग्दर्शन होता है।

बिना व्यवहार सम्यग्दर्शन के निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं होता है। तथा ऐसा भी नहीं होता कि पहले निश्चय सम्यग्दर्शन हो पश्चात् व्यवहार सम्यग्दर्शन हो, ऐसा मानने में भी आगम से विरोध आता है, क्योंकि यदि ऐसा ही माना जाये कि पहले निश्चय सम्यग्दर्शन होता है पश्चात् व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है, तो निश्चय को साधन व व्यवहार को साध्य मानना पड़ेगा जो कि किसी भी आगम व आगमज्ञ को इष्ट नहीं होगा तथा यह कथन न्यायपूर्ण भी नहीं होगा।

क. द्र. सं. टी. 41
ख. स. सा., ता.वृ. 97
ग. स. सा., ता. वृ. 177-178
घ. प. प्र., टी. 2/17
ङ. स. सा. / ता. वृ. 183
च. द्र. सं., टी. 41
छ. द्र. सं., टी. 41

अतः सिद्ध है कि व्यवहारपूर्वक ही निश्चय सम्यग्दर्शन होता है । कुछ लोगों की मान्यता है कि चारित्र मोहनीय के अनन्तानुबंधी चतुष्क के अभाव हो जाने पर चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव को उतने अंश में वीतराग चारित्र मान लेना चाहिए किन्तु यह भी स्वीकार नहीं है क्योंकि चतुर्थ गुणस्थान में सराग चारित्र के साथ अन्यथानुपपत्ति है अथवा इस गुणस्थान में अनन्तानुबंधी के अभाव में जैनाचार्यों ने सम्यक्त्वाचरण चारित्र माना है, न कि वीतराग चारित्र तथा वीतराग चारित्र संयमाचरण पूर्वक ही होता है और संयम इसके नहीं है । अतः उसे वीतराग चारित्र मानना आगम से विपरीत मानना है । ऐसी मान्यता सम्यग्दृष्टि की नहीं हो सकती है क्योंकि सम्यग्दृष्टि आगम से विपरीत एक भी अक्षर को नहीं मानता है और आगम के एक भी अक्षर पर अश्रद्धान नहीं करता है । अन्यथा वह सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है । कदाचित् जैनागम में यदि दो आचार्यों की दो मान्यताएँ मिलती हैं तो वह दोनों को ही स्वीकार करता है किन्तु वह आगम और युक्ति से सिद्ध होना चाहिए ।

यहाँ इतना विशेष है कि जहाँ दो आचार्यों के कथन में विरोध दिखलाई पड़ता है वह वास्तविक नहीं है अपितु अपेक्षा भेद के कथन मात्र है । अतः उसका नयों का आश्रय करके समाधान खोज लेना चाहिए ।

*****

षष्ठ अध्याय

सम्यग्दर्शन के गुण, अंग, अतिचार और दोष

सम्यग्दृष्टि के गुण

संवेग, निर्वेद, निन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकम्पा ये आठ गुण सम्यक्त्वयुक्त जीव के होते हैं।[234]

सम्यग्दर्शन के अन्य गुण या अंग - नि:शंकित, नि:कांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये आठ सम्यक्त्व के अंग या गुण जानना चाहिए।[235]

सम्यग्दर्शन के आठ अंगों या गुणों के लक्षण

1. नि:शंकित अंग - वस्तु का स्वरूप यही है, अन्य प्रकार का नहीं है, इस प्रकार का है, अन्य प्रकार का नहीं, इस प्रकार से जैनमार्ग में तलवार की धार के समान निश्चल श्रद्धान नि:शंकित अंग कहा जाता है।[236]

निश्चयनय से व्यवहार नि:शंकित गुण की सहायता से इस लोक का भय आदि सात भयों को छोड़कर घोर उपसर्ग तथा परिषहों के आने पर भी शुद्ध उपयोग रूप जो निश्चय रत्नत्रय है उसकी भावना को ही नि:शंकित गुण जानना चाहिए।[237]

2. नि:कांक्षित अंग - जो चेतयिता कर्मों के फलों के प्रति तथा अन्य सभी धर्मों (बौद्ध, चार्वाक, परिव्राजक आदि) के प्रति कांक्षा नहीं करता है, उसको नि:कांक्षित

---

234. *संवेओ णिव्वेओ णिंदा गरुहा य उवसमो भत्ती ।*
वच्छल्लं अणुकंपा गुणट्ठ-सम्मत्तजुत्तस्स ॥ स.सा./प्रक्षेपक त.वृ.गा./**177**

235. *णिस्संकिद णिक्कंखिद णिव्विदगिंच्छा अमूढ़दिट्ठी य ।*
अवगूहण-ठिदिकरणं वच्छल्लं पहावणा य ते अट्ठ ॥ मूला. **5/4** गा.**201**

236. *इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यच्चान्यथा ।*
इत्यकंपायसाम्भोवत्सन्मार्गेऽसंशया रुचि:॥ र.क.श्रा.**11**

237. *निश्चयनयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारनि:शङ्कितगुणस्य सहकारित्वेनेहलोकाकांक्षणा-गुप्तिमरणव्याधिवेदनाकस्मिकाभिधानभयसप्तकं मुक्त्वा घोरोपसर्गपरीषहप्रस्तावेऽपि शुद्धोपयोगलक्षणनिश्चयरत्नत्रयभावेनैव नि:शङ्कगुणो ज्ञातव्य इति ।*
द्र. सं. / टी. **41**

सम्यग्दृष्टि कहते हैं ।[238]

दुर्धर तप के द्वारा मोक्ष की इच्छा करता हुआ जो प्राणी स्वर्गसुख के लिए धर्म का आचार नहीं करता है, उसके निःकांक्षा गुण होता है ।[239] अर्थात् सम्यग्दृष्टि मोक्ष की इच्छा से तपादि का अनुष्ठान करता है, न कि इन्द्रियों के भोगों की इच्छा से ।

इह-लोक तथा पर-लोक संबंधी आशारूप भोगाकांक्षा या निदान-त्याग के द्वारा केवलज्ञानादि अनन्तगुणों की प्रगटता रूप मोक्ष के लिए ज्ञान, पूजा, तपश्चरण इत्यादि अनुष्ठानों का जो करना है, वही निःकांक्षित गुण है । इस प्रकार व्यवहार निःकांक्षित गुण का स्वरूप जानना चाहिए ।[240]

निश्चय से उसी व्यवहार निःकांक्षा गुण की सहायता से देखे-सुने तथा अनुभव किये हुए जो पाँचों इन्द्रियों संबंधी भोग हैं उनके त्याग से तथा निश्चयरत्नयत्र की भावना से उत्पन्न जो पारमार्थिक निजात्मोत्थ सुखरूपी अमृत रस है, उसमें चित्त का संतोष होना निःकांक्षागुण है ।[241]

3. निर्विचिकित्सा अंग - स्वभाव से अपवित्र और रत्नत्रय से पवित्र ऐसे धर्मात्माओं (साधुओं) के शरीर में ग्लानि नहीं करना और उनके गुणों में प्रीति करना सम्यग्दर्शन का निर्विचिकित्सा अंग माना जाता है ।[242]

भेदाभेद रत्नयत्र के आराधक भव्य जीवों के दुर्गंधयुक्त एवं वीभत्स आकृति आदि को देखकर धर्मबुद्धि से अथवा करुणाभाव से यथायोग्य विचिकित्सा (ग्लानि) को दूर करना द्रव्य निर्विचिकित्सा गुण है ।[243]

---

238. *जो दुण करेदि कंखं कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु ।*
सो णिक्कुंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ स. सा. **230**

239. *जो सग्गसुहणिमित्तं धम्मं णायरदि दूसहतवेहिं ।*
मोक्खं समीहमाणो णिक्कुंखा जायते तस्स ॥ का. अ. **416**

240. *इहलोकपरलोकाशारूपभोगाकाङ्क्षानिदानत्यागेन केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिरूपमोक्षार्थं ज्ञानपूजातपश्चरणाद्यनुष्ठानकरणं निष्काङ्क्षागुणो भण्यते ।* *द्र.सं.टी.*41

241. *निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारनिष्काङ्क्षागुणस्य सहकारित्वेन दृष्टश्रुतानुभूतपञ्चेन्द्रिय भोगत्यागेन निश्चयरत्नत्रयभावनोत्पन्नपारमार्थिकस्वात्मोत्थसुखामृतरसे चित्तसंतोषः स एव निष्कांक्षागुण इति ।* द्र. सं., टी. **41**

242. *स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते ।*
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सता ॥ र. क. श्रा. **13**

243. *भेदाभेदरत्नत्रयराधकभव्यजीवानां दुर्गन्धवीभत्सादिकं दृष्ट्वा धर्मबुद्ध्या कारुण्यभावेन वा यथायोग्यं विचिकित्सापरिहरणं द्रव्यनिर्विचिकित्सागुणो भण्यते ।* द्र.सं.,टी.**41**

शरीर को अत्यन्त अशुचि मानकर उसमें शुचित्व के मिथ्या संकल्प को छोड़ देना अथवा अर्हन्त के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन में यह अयुक्त है, घोर कष्ट है, यह सब नही बनता, इस प्रकार की अशुभ भावनाओं से चित्त-विचिकित्सा नहीं करना अर्थात् ऐसे भावों का विरह निर्विचिकित्सा है ।[244]

जैनमत में सब अच्छी बातें है, परंतु वस्त्र के आवरण से रहितता अर्थात् नग्नपना और जलस्नान आदि का न करना यही एक दूषण है इत्यादि बुरे भावों को विशेष ज्ञान के बल से दूर करना, निर्विचिकित्सा कहलाती है ।[245]

निश्चय से तो इसी (पूर्वोक्त) निर्विचिकित्सा गुण के बल से जो समस्त राग-द्वेष आदि विकल्परूप तरंगों का त्याग करके निर्मल आत्मानुभव लक्षण निज शुद्धात्मा में स्थिति करना निर्विचिकित्सा गुण है ।[246]

4. अमूढ़दृष्टि अंग - कुमार्ग व कुमार्गियों में मन से सम्मत न होना, काय से सराहना नही करना, वचन से प्रशंसा नही करना सो अमूढ़दृष्टि नामक अंग कहा जाता है ।[247]

कुदृष्टियों के द्वारा बनाये हुए, अज्ञानियों के चित्त में विस्मय को उत्पन्न करने वाले रसायनादिक - विषयक शास्त्रों को देखकर या सुनकर जो कोई मूढ़भाव से धर्मबुद्धि करके उनमें प्रीति तथा भक्ति करता है उसको व्यवहार से अमूढ़दृष्टि कहते हैं ।[248]

निश्चयनय से व्यवहार अमूढ़दृष्टि गुण के प्रसाद से जब अंतरंग और बहिरंग तत्त्व का निश्चय हो जाता है, तब संपूर्ण मिथ्यात्व रागादि शुभाशुभ संकल्प-विकल्पों में इष्टबुद्धि को छोड़कर त्रिगुप्तिरूप से विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावी निजात्मा में निश्चय अवस्थान करना

---

244. *शरीराद्यशुचिस्वभावमवगम्य शुचीति मिथ्यासंकल्पापनयः, अर्हत्प्रवचने वा इदमयुक्तं घोरं कष्टं न चेदिदं सर्वमुपपन्नमित्यशुभभावनाविरहः निर्विचिकित्सता ।*
रा. वा. **6/24**

245. *यत्पुनर्जिनसमये सर्वं समीचीनं किन्तु वस्त्रप्रावरणं जलस्नानादिकं च न कुर्वन्ति तदेव दूषणमित्यादिकुत्सितभावस्य विशिष्टविवेकबलेन परिहरणं सा निर्विचिकित्सा भण्यते ।* द्र. सं. टी. **41**

246. *निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारनिर्विचिकित्सागुणस्य बलेन समस्तद्वेषादिविकल्परूप-कल्लोलमालात्यागेन निर्मलात्सानुभूतिलक्षणे निजशुद्धात्मनि व्यवस्थानं निर्विचिकित्सा गुण इति ।* द्र. सं. टी. **41**

247. *कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः ।*
असंपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढ़ा दृष्टिरुच्यते ॥ र. का. श्रा. **14**

248. *अज्ञानिजनचित्तचमत्कारोत्पादकं दृष्ट्वा श्रुत्वा च योऽसौ मूढ़भावेन धर्मबुद्ध्या तत्र रुचिं भक्ति न कुरुते स एव व्यवहारोऽमूढ़दृष्टिरुच्यते ।* द्र. सं. टी. **41**

अमूढ़दृष्टि गुण है ।[249]

जो चेतयिता समस्त भावों में अमूढ़ है, यथार्थदृष्टि वाला है, उसको निश्चय से अमूढ़दृष्टि सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए ।[250]

कुगुरु आदि के निषेध का कारण - जिस प्रकार अपने यूथ की कुशल चाहने वाला सेनापति अपने यूथ के मदोन्मत्त हाथी के बच्चे की प्रतिपक्षियों के प्रबल हाथी से रक्षा करता है, क्योंकि वह बच्चा है । बड़ा होने पर उस प्रबल हाथी का घात करने योग्य हो जायेगा तब स्वयं उसका घात कर देगा । ऐसे ही सम्यग्दृष्टि प्रारंभिक भूमिका में अन्यदृष्टि के साथ भिड़ने से अपने को बचाये ।[251]

5. उपगूहन (उपबृंहण) अंग - अज्ञानी तथा असमर्थ जनों के आश्रय से अत्यन्त पवित्र जैनधर्म में उत्पन्न हुई निन्दा को जो दूर करते हैं, उसको उपगूहन अंग होता है ।[252]

जो सम्यग्दृष्टि दूसरों के दोषों को ढ़कता है और अपने सुकृत को लोक में प्रकाशित नहीं करता उसे उपगूहनगुण का धारी कहते है ।[253]

व्यवहार उपगूहन गुण की सहायता से अपने निरञ्जन निर्दोष परमात्मा को ढ़कने वाले रागादि दोषों को, उसी परमात्मा में सम्यक्‌श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप ध्यान के द्वारा ढ़कना, नाश करना, छिपाना, झम्पन करना निश्चय नय से उपगूहन गुण है ।[254] उत्तम-

---

249. *निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारमूढ़दृष्टिगुणस्य प्रसादेनान्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वनिश्चये जाते सति समस्तमिथ्यात्वरागादिशुभाशुभसंकल्पविकल्पेष्टात्मबुद्धिमुपादेयबुद्धिं हितबुद्धिं ममत्वभावं त्यक्त्वा त्रिगुप्तिरूपेण विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजात्मनि यन्निश्चलावस्थानं तदेवामूढ़दृष्टित्वमिति ।* द्र. स., टी. **41**

250. *जो हवइ असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु ।*
सो खलु अमूढदिट्ठो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ स. सा. **232**

251. *सम्यक्त्वगन्धकलभः प्रबलप्रतिपक्षकरटिसंघट्टम् ।*
कुर्वन्नेव निवार्यः स्वपक्षकल्याणमभिलषता ॥ अन. ध. **2/85**

252. *स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम् ।*
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥ र. क. श्रा. **15**

253. *जो परदोसं गोवदि णियसुकयं जो ण पयडदे लोए ।*
भवियव्व भावणरओ अवगूहणकारओ सो हु ॥ का. अ. **419**

254. *निश्चयनयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारोपगूहणगुणस्य सहकारित्वेन निजनिरञ्जन-निर्दोषपरमात्मनः प्रच्छादका ये मिथ्यात्वरागादिदोषास्तेषां तस्मिन्नेव परमात्मनि सम्यक् श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपं यद्ध्यानं तेन प्रच्छादनं विनाशनं गोपनं झम्पनं तदेवोपगूहनमिति।* द्र. सं., टी. **41**

क्षमादि-धर्म-भावनाओं के द्वारा आत्मा के धर्म की वृद्धि करना उपबृंहण गुण है ।[255]

'उपबृंहण' इसका अर्थ 'बढ़ाना' होता है । बृह् (बृहि) वृद्धौ इस धातु से बृंहण शब्द की उत्पत्ति होती है । 'उप' इस उपसर्ग के योग से 'बृह्' धातु का अर्थ बदला नहीं है, स्पष्ट तथा अग्राम्य रूप से, कान और मन को प्रसन्न करने वाले वस्तु की यथार्थता को भव्यों के आगे दर्पण के समान दिखाने वाले धर्मोपदेश के द्वारा तत्त्वश्रद्धान बढ़ाना उपबृंहणगुण है । इन्द्र प्रमुख देवों के द्वारा जैसी महत्त्वयुक्त पूजा की जाती है, वैसी जिनपूजा करके अपने को जिनधर्म तथा जिनभक्ति में स्थिर करना अथवा दुर्धर तपश्चरण या आतापनादि योग धारण करके अपनी आत्मा में श्रद्धा गुण उत्पन्न करना, इसको भी उपबृंहण कहते हैं ।[256]

6. स्थितिकरण अंग - सम्यग्दर्शन वा चारित्र से डिगते हुए पुरुष को जो उसी में स्थिर कर देना है सो विद्वानों के द्वारा स्थितिकरण अंग कहा गया है ।[257] चार प्रकार के संघ में से यदि कोई दर्शनमोहनीय के उदय से दर्शन-ज्ञान को या चारित्रमोहनीय के उदय से चारित्र को छोड़ने की इच्छा करे तो यथाशक्ति शास्त्रानुकूल धर्मोपदेश से, धन से या सामर्थ्य से या अन्य किसी उपाय से उसको धर्म में स्थिर कर देना, वह व्यवहार से स्थितिकरण है ।[258]

जो चेतयिता उन्मार्ग में जाते हुए अपने आत्मा को भी मार्ग में स्थापित करता है वह स्थितिकरणयुक्त सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए ।[259]

---

255. *उत्तमक्षमादिभावनया आत्मनो धर्मपरिवृद्धिकरणमुपबृंहणम् ।* रा. वा. 6/24

256. *उपबृंहणं नाम वर्द्धनम् । बृह बृहि वृद्धाविति वचनात् । धात्वर्थानुवादी चोपसर्गः उप इति । स्पष्टेनाग्राम्येण श्रोत्रमनः प्रीतिदायिना वस्तुयाथात्म्यप्रकाशनप्रवणेन धर्मोपदेशेन परस्य तत्त्वश्रद्धानबर्द्धनं तदुपबृंहणम् । सर्वजनविस्मयकारिणीं शतमखप्रमुखगीर्वाण-समितिविरचितोपचितिसदृशीं पूजां संपाद्य दुर्धरतपोयोगानुष्ठानेन वा आत्मनि श्रद्धा-स्थिरीकरणम् ।* भ.आ./वि.टी. **44**

257. *दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।*
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥ र. क. श्रा. **16**

258. *चातुर्वर्णसङ्घस्य मध्ये यदा कोऽपि दर्शनचारित्रमोहोदयेन दर्शनं ज्ञानं चारित्रं वा परित्यक्तुं वाञ्छति तदागमाविरोधेन यथाशक्त्या धर्मश्रवणेन वा अर्थेन वा सामर्थ्येन वा केनाप्युपायेन यद्धर्मे स्थिरत्वं क्रियते तद्व्यवहारेण स्थितिकरणमिति ।*
द्र. सं., टी. **41**

259. *उम्मग्गं गच्छंतं सगं पि मग्गे ठवेदि जो चेदा ।*
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ स.सा **234**

काम, क्रोध, मद, लोभादिक भावों के होने पर न्यायमार्ग से च्युत होते हुए अपने आत्मा को या दूसरों को जिस-किसी प्रकार धर्म में स्थित करना भी स्थितिकरण है ।[260]

7. वात्सल्य अंग - बाह्य और आभ्यन्तर रत्नत्रय को धारण करने वाले मुनि, आर्यिका, श्रावक तथा श्राविका रूप चारों प्रकार के संघ में जैसे-गाय की बछड़े में प्रीति रहती है उसके समान, अथवा पाँचों इन्द्रियों के विषयों के निमित्त पुत्र, स्त्री, सुवर्ण आदि में जो स्नेह रहता है उसके समान स्वाभाविक स्नेह करना, यह व्यवहार नय की अपेक्षा से वात्सल्य कहा जाता है ।[261]

जो सम्यग्दृष्टि जीव प्रिय वचन बोलता हुआ अत्यन्त श्रद्धा से धार्मिक जनों में भक्ति रखता है तथा उनके अनुसार आचरण करता है, उस भव्य जीव के वात्सल्यगुण कहा गया है ।[262]

चतुर्गति रूप संसार से तिरने में कारणभूत मुनि, आर्यिका आदि चार प्रकार के संघ में, बछड़े में गाय की प्रीति की तरह प्रीति करना चाहिए । यही वात्सल्य गुण है ।[263]

मोक्षसुख की संपदा के कारणभूत जैनधर्म में, अहिंसा में और समस्त साधर्मी जनों में निरन्तर उत्कृष्ट वात्सल्य व प्रीति का अवलंबन करना चाहिए ।[264]

व्यवहार वात्सल्यगुण के सहकारीपने में जब धर्म में दृढ़ता हो जाती है, तब मिथ्यात्व, राग आदि समस्त शुभ-अशुभ बाह्य पदार्थों में प्रीति छोड़कर रागादि विकल्पों की उपाधि से रहित परम-स्वास्थ्य के अनुभव से उत्पन्न सदा आनन्द रूप सुखमय अमृत के

---

260. *कामक्रोधमदादिषु चलयितुमुदितेषु वर्त्मनो न्यायात् ।*
श्रुतमात्मनः परस्य च युक्त्या स्थितिकरणमपि कार्यम् ।। पु. सि. **28**

261. *बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयाधारे चतुर्विधसंघे वत्से धेनुवत्पञ्चेन्द्रियविषयनिमित्तं पुत्र-कलत्रसुवर्णादिस्नेहवद्वा यदकृत्रिमस्नेहकरणं तद्व्यवहारेण वात्सल्यं भण्यते ।*
द्र. सं., टी. **41**

262. *जो धम्मिएसु भत्तो अणुचरणं कुणदि परमसद्धाए ।*
पियवयणं जप्पंतो वच्छल्लं तस्स भव्वस्स ।। का. अ. **421**

263. *चादुव्वण्णे संघे चदुगदिसंसारणित्थरणभूदे ।*
वच्छल्लं कादव्वं वच्छे गावी जहा गिद्धी ।। मूला. **5/66** गा.**263**

264. *अनवरतमहिंसायां शिवसुखलक्ष्मीनिबन्धने धर्मे ।*
सर्वेष्वपि च सधर्मिषु परमं वात्सल्यमालम्ब्यम् ।। पु. सि. **29**

आस्वादन के प्रति प्रीति करना ही निश्चय वात्सल्य है ।[265]

8. प्रभावना अंग - अज्ञानरूपी अंधकार का विनाश जिस प्रकार बने उस प्रकार उसे दूर करके जिनमार्ग का समस्त मतावलम्बियों में प्रभाव प्रगट करना सो प्रभावना नाम का आठवाँ अंग है ।[266]

परसमय रूपी जुगनुओं के प्रकाश को पराभूत करने वाले ज्ञानरवि की प्रभा से इन्द्र के सिंहासन को कँपा देने वाले महोपवासादि सम्यक् तपों से तथा भव्यजन रूपी कमलों को विकसित करने के लिए सूर्यप्रभा के समान जिनपूजा के द्वारा सद्धर्म का प्रकाश करना मार्ग प्रभावना है ।[267]

महापुराणादि धर्मकथा के व्याख्यान कर, हिंसा दोष से रहित तपश्चरण कर, जीवों पर दया व अनुकंपा कर, जैनधर्म की प्रभावना करना चाहिए । 'अपि' शब्द से परवादियों को जीतना, अष्टांगनिमित्त ज्ञान, पूजा, दान आदि से भी प्रभावना करना चाहिए ।[268]

जो चेतयिता विद्यारूपी रथ पर आरूढ़ होकर, मनोरथरूपी पथ में (ज्ञानरूपी रथ के चलने में हेतुभूत मोक्षमार्ग में) भ्रमण करता है, वह जिनेन्द्र भगवान के ज्ञान की प्रभावना करने वाला सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए ।[269]

व्यवहार प्रभावना गुण के बल से मिथ्यात्व, विषय-कषाय आदि संपूर्ण विभाव परिणामरूप परसमय के प्रभाव को नष्ट करके शुद्धोपयोग लक्षण वाले स्वसंवेदन ज्ञान से निर्मल-ज्ञान-दर्शन रूप स्वभाव वाले निज शुद्धात्मा का जो प्रकाशन अथवा अनुभवन है

---

265. *निश्चयवात्सल्यं पुनस्तस्यैव व्यवहारवात्सल्यगुणस्य सहकारित्वेन धर्मे दृढत्वे जाते सति मिथ्यात्वरागादिसमस्तशुभाशुभबहिर्भावेषु प्रीतिं त्यक्त्वा रागादिविकल्पोपाधिरहितपरमस्वास्थ्यसंवित्तिसंजातसदानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादं प्रति प्रीतिकरणमेवेति सप्तमाङ्गं व्याख्यातम् ।* द्र. सं., टी. **41**

266. *अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम् ।*
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥ र. क. श्रा. **18**

267. *ज्ञानरविप्रभया परसमयखद्योतोद्योततिरस्कारिण्या, सत्तपसा महोपवासादिलक्षणेन सुरपतिविष्टरप्रकम्पनहेतुना, जिनपूजया वा भव्यजनकमलषण्डप्रबोधनप्रभया, सद्धर्मप्रकाशनं मार्गप्रभावनमिति संभाव्यते ।* रा. वा. **6/24**

268. *धम्मकहाकहणेण य बाहिरजोगेहिं चाविअण्णवज्जो ।*
धम्मो पहाविदव्वो जीवेसु दयाणुकंपाए ॥ मूलाचार **5/82** गा.**264**

269. *विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा ।*
जो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठि मुणेदव्वो ॥ स. सा. **236**

वह निश्चय से प्रभावना है ।[270]

आठों अंगों की प्रधानता - जैसे एक-दो-अक्षर रहित अशुद्ध मंत्र विष की वेदना को नष्ट नहीं करता है, वैसे ही अंग-रहित सम्यग्दर्शन भी संसार की स्थिति को छेदने में समर्थ नही है ।[271]

सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार

1. शंका 2. कांक्षा, 3. विचिकित्सा, 4. अन्यदृष्टिप्रशंसा और 5. अन्यदृष्टिसंस्तव ये सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचार हैं ।[272]

1. शंका - जिन भगवान द्वारा उपदिष्ट नौ पदार्थों के यथार्थ स्वरूप में जो शंका का होना वह दर्शन को घातने वाला पहला दोष है ।[273]

मोहादिक का रुचिपूर्वक हनन करने का निश्चय करने पर भी यदि जिनवचन के विषय में दोनों ही कोटियों के संशय रूप ज्ञान पर आरुढ़ रहे, (वस्तु अंशों के संबंध में ऐसा ही है अथवा अन्यथा है ऐसा संशय बना रहे) तो इधर-उधर भागने वाले घोड़े पर आरूढ़ योद्धावत् वैरियों द्वारा मारा जाता है अर्थात् मिथ्यात्व को प्राप्त होता है ।[274]

2. कांक्षा - अभिलाषा तीन प्रकार की होती हैं - इहलोक संबंधी, परलोक संबंधी और कुधर्मी संबंधी । जो इन तीनों की अभिलाषा नहीं करता वह सम्यग्दर्शन की शुद्धि को पाता है । इहलोक में बलदेव, चक्रवर्ती, सेठ आदि बनने या राज्य पाने की अभिलाषा इह लोक संबंधी अभिलाषा है । परलोक में देव आदि होने की प्रार्थना करना परलोक संबंधी अभिलाषा है । ये दोनों ही दर्शन को घातने वाली हैं । रक्त पट (बौद्ध),

---

270. *निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहारप्रभावना-गुणस्य बलेन मिथ्यात्वविषयकषायप्रभृतिसमस्त -विभावपरिणामरूपपरसमयानां प्रभावं हत्वा शुद्धोपयोगलक्षणस्वसंवेदनज्ञानेन विशुद्धज्ञान-दर्शन-स्वभावनिजशुद्धात्मनः प्रकाशनमनुभवनमेव प्रभावनेति ।*
द्र. सं., टी **41**

271. *नाङ्गहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसंततिम् ।*
न हि मंत्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम् ।। र. क. श्रा. **21**

272. *शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः।* त.सू.**7/23**

273. *णव य पदत्था एदे जिणदिट्ठा वण्णिदा मए तच्चा ।*
एत्थ भवे जा संका दंसणघादी हवसि एसो ।। मूला. **5/51** गा.**248**

274. *सुरुचिः कृतनिश्चयोऽपि हन्तुं द्विषतः प्रत्ययमाश्रितः स्पृशन्तम् ।*
उभयीं जिनवाचि कोटिमाजौ तुरगं वीर इव प्रतीर्यते तैः । अन.ध. **2/73**

चार्वाक, तापस, परिव्राजक आदि अन्य धर्म वालों के धर्म में अभिलाषा करना सो कुधर्माकांक्षा है।[275]

3. विचिकित्सा - साधुओं के शरीर के विष्ठा, मल, मूत्र, कफ, नाक का मल, चर्म, हाड़, पीव, मांस, खून, वमन, सर्व अंगों का मल, लार इत्यादि मलों को देखकर ग्लानि करना द्रव्य विचिकित्सा है।[276]

क्षुधादि **22** परीषहों में संक्लेश-परिणाम करना भावविचिकित्सा है।[277]

4. अन्यदृष्टि-प्रशंसा - मिथ्यादृष्टि के ज्ञान और चारित्र गुणों का मन से उद्भावन करना अन्यदृष्टि-प्रशंसा है।[278]

5. अन्यदृष्टि-संस्तव - मिथ्यादृष्टि में जो गुण हैं या जो गुण नहीं हैं उन दोनों का सद्भाव बतलाते हुए कथन करना अन्यदृष्टि-संस्तव है।[271]

सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष

तीन मूढ़ता, आठ मद, छह अनायतन और शंकादि आठ दोष (आठ अंगों से विपरीत आठ दोष) ये **25** सम्यग्दर्शन के दोष कहे गये हैं।[280]

मूढ़ता - कुदेव में देवबुद्धि, अधर्म में धर्मबुद्धि और कुगुरु में गुरुबुद्धि होने को मूढ़ता कहते हैं।

---

275. *तिविहा य होइ कंखा इह परलोए तधा कुधम्मे य।*
तिविहं पि जो ण कुज्जा दंसणसुद्धीमुवगदो सो॥
बलदेवचक्कवट्टीसेट्ठीरायत्तणादि अहिलासो।
इह परलोगे देवत्तपत्थणा दंसणाभिघादी सो॥
रत्तवणडचरगतावसपरिहत्तादीणमण्णतित्थीणं।
धम्मेह्मि य अहिलासो कुधम्मकंखा हवदि एसा॥
मूला.5/52-54 गा.249,250,251

276. *उच्चार पस्सवणं खेलं सिंघाणयं च चम्मट्ठी।*
पूयं च मंससोणिदवंतं जल्लादि साधूणं॥ **मूला. 5/56 गा.253**

277. *खुधादिए भावविदिगिंछा।* **मूला. 5/55 गा.252**

278. *मनसा मिथ्यादृष्टिर्ज्ञानचारित्रगुणोद्भावनं प्रशंसा।* **स.सि.,टी.7/23**

279. *भूताभूतगुणोद्भाववचनं संस्तवः।* **स.सि.टी. 7/23**

280. *मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथानायतनानि षट्।*
अष्टौ शङ्कादयश्चेति दृग्दोषाः पञ्चविंशतिः॥ **ज्ञा. 6/8 में उद्धृत**

मूढ़ता के भेद - देवमूढ़ता, लोकमूढ़ता और समयमूढ़ता के भेद से मूढ़ता तीन प्रकार की हैं ।[281]

देवमूढ़ता का लक्षण - आशावान् होता हुआ वरदान की इच्छा करके रागद्वेषरूपी मैल से मलिन देवताओं की जो उपासना की जाती है सो देवमूढ़ता कही जाती है ।[282]

वीतराग सर्वज्ञदेव के स्वरूप को न जानता हुआ जो व्यक्ति, ख्याति, सम्मान, लाभ, रूप, लावण्य, सौभाग्य, पुत्र, स्त्री, राज्य आदि संपदा प्राप्त होने के लिए राग-द्वेष युक्त, आर्त्त-रौद्र ध्यानरूप परिणामों वाले क्षेत्रपाल, चण्डिका आदि मिथ्यादृष्टि देवों की आराधना करता है, उसको देवमूढ़ता कहते हैं ।[283]

लोकमूढ़ता का लक्षण - धर्म समझकर गङ्गा, यमुना आदि नदियों में अथवा सागर में स्नान करना, बालू और पत्थरों आदि का ढ़ेर करना, पर्वत से गिरकर मर जाना और अग्नि में जल जाना लोकमूढ़ता कही जाती है ।[284]

गंगादि जो नदीरूप तीर्थ हैं इनमें स्नान करना, समुद्र में स्नान करना, प्रात:काल में स्नान करना, जल में प्रवेश करके मर जाना, अग्नि में जल मरना, गाय की पूँछ आदि को ग्रहण करके मरना, पृथ्वी, अग्नि और वटवृक्ष आदि की पूजा करना, ये सब पुण्य के कारण हैं, इस प्रकार जो कहते हैं उसको लोकमूढ़ता जानना चाहिए ।[285]

गुरु या समय-या पाखंड मूढ़ता का लक्षण - परिग्रह, आरंभ और हिंसा सहित संसार चक्रमें भ्रमण करने वाले पाखण्डी साधु, तपस्वियों का आदर-सत्कार, भक्ति-पूजा

---

281. *देवतामूढलोकमूढसमयमूढभेदेन मूढत्रयं भवति ।* द्र. सं., टी. **41**

282. *वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसा: ।*
देवता युदुपासीत देवतामूढमुच्यते ।। र. क. श्रा. **23**

283. *वीतरागसर्वज्ञदेवतास्वरूपमजानन् ख्यातिपूजालाभरूपलावण्यसौभाग्यपुत्रकलत्र-राज्यादिविभूतिनिमित्तं रागद्वेषोपहतार्त्तरौद्रपरिणतक्षेत्रपाल चण्डिकादिमिथ्यादेवानां यदाराधनं करोति जीवस्तद्देवतामूढत्वं भण्यते ।* द्र. सं., टी. **41**

284. *आपगासागरस्नानमुच्चय: सिकताश्मनाम् ।*
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढ़ निगद्यते ।। र. क. श्रा. **22**

285. *गंगादिनदीतीर्थस्नानसमुद्रस्नानप्रात: स्नानजलप्रवेशमरणाग्निप्रवेशमरण-गोग्रहणादिमरणभूम्यग्निवटवृक्षपूजादीनि पुण्यकारणानि भवन्तीति यद्वदन्ति तल्लोकमूढत्वं विज्ञेयम् ।* द्र. सं., टी. **41**

आदि करना ये सब पाखंड या गुरुमूढ़ता हैं ।[286]

अज्ञानी लोगों के चित्त में चमत्कार अर्थात् आश्चर्य उत्पन्न करने वाले ज्योतिष, मंत्रवाद आदि को देखकर, वीतराग, सर्वज्ञ द्वारा कहा हुआ जो धर्म है उसको छोड़कर मिथ्यादृष्टिदेव, मिथ्या-आगम और खोटा तप करनेवालें कुलिंगी की भय से, वाञ्छा से, स्नेह और लोभ से जो परधर्म के लिए प्रणाम, विनय, पूजा, सत्कार आदि करना सो समयमूढ़ता है ।[287]

मद - ज्ञान आदि आठ प्रकार से अपना बड़प्पन मानने को गणधरादि ने मद कहा है ।[288]

आठ मदों के लक्षण

मद के भेद - विज्ञान(ज्ञान), आज्ञा, कुल, जाति, बल, ऐश्वर्य, तप और रूप ये आठ मद हैं ।[289]

1. विज्ञानमद- 'मैं ज्ञानवन् हूँ, सकलशास्त्रों का ज्ञाता हूँ' यह विज्ञान या ज्ञानमद है।

2. पूजा या प्रतिष्ठा या आज्ञा मद - राजा-महाराजा मेरी सेवा करते हैं यह पूजा, आज्ञा या प्रतिष्ठा मद है ।

3. कुलमद - मेरा पितृपक्ष अतीव उज्जवल है । उसमें ब्रह्महत्या या ऋषिहत्या आदि का भी दूषण आज तक नहीं लगा है यह कुलमद है ।

4. जातिमद- मेरी माता का पक्ष बहुत ऊँचा है । वह संघपति की पुत्री है । शील में सुलोचना, सीता, अनन्तमति, चन्दना आदि सरीखी है यह जाति मद है ।

5. बलमद - 'मैं सहस्रभट, लक्षभट, कोटिभट हूँ' यह बलमद है ।

6. ऐश्वर्य या ऋद्धि मद - मेरे पास अरबों रुपयों की संपत्ति थी । उस सबको छोड़कर मैं मुनि हुआ हूँ । अन्य मुनियों ने अधर्मी होकर दीक्षा ग्रहण की है यह ऋद्धि या ऐश्वर्य मद है ।

---

286. *सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्त्तवर्तिनाम् ।*
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ।। र. क. श्रा. **24**

287. *आज्ञानिजनचित्तचमत्कारोत्पादकं ज्योतिष्कमंत्रवादादिकं दृष्ट्वा वीतरागसर्वज्ञप्रणीत समयं विहाय कुदेवागमलिङ्गीनां भयाशा-स्नेहलोभैर्धर्मार्थं प्रणाम-विनयपूजा पुरस्कारादिकरणं समयमूढत्वमिति ।* द्र. सं., टी **41**

288. *अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ।* र. क. श्रा. **25**

289. *विज्ञानमैश्वर्य आज्ञा कुलबलतपोरूपजातिः मदाः ।* मू. आ. / **53**

7. तप मद - मैं सिंहनिष्क्रिड़ित, विमानपंक्ति, सर्वतोभद्र आदि महातपों की विधि का विधाता हूँ। मेरा सारा जन्म तप करते-करते बीता है। ये सर्व मुनि तो नित्य भोजन में रत रहते हैं यह तप मद है।

8. रूपमद - मेरे रूप के सामने कामदेव भी दासता करता है यह रूपमद है।[290]

अनायतन

अनायतन का लक्षण - सम्यक्त्वादि गुणों के आयतन या घर या आवास या आश्रय (आधार) के निमित्त को 'आयतन' कहते हैं और उससे विपरीत अनायतन है।[291]

अनायतन के भेद - मिथ्यादेव, मिथ्यादेवों के सेवक, मिथ्यातप, मिथ्यातपस्वी, मिथ्याशास्त्र और मिथ्याशास्त्रों के धारक अनायतन हैं।[292]

कुदेव, कुगुरु व कुशास्त्र के तथा इन तीनों के उपासकों के घरों में आना-जाना, इनको आगमकारों ने षड्अनायतन ऐसा नाम दिया हैं।[293]

मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचार ये तीन तथा इन तीनों के धारक अर्थात् मिथ्यादृष्टि, मिथ्याज्ञानी व मिथ्याचारवान् पुरुष ये छह अनायतन हैं अथवा असर्वज्ञ,

---

290 *अहं ज्ञानवान् सकलशास्त्रज्ञो वर्ते । अहं मान्यो महामण्डलेश्वरा मत्पादसेवकाः । कुलमपि मम पितृपक्षोऽतीवोज्वलः कोऽपि ब्रह्महत्या ऋषिहत्यादिभिरदोषम् । जातिः-मम माता संघस्य पत्युर्दुहिता शीलेन सुलोचना-सीता-अनन्तमती चन्दनादिका वर्तते। बलं-अहं सहस्रभटो लक्षभटः कोटिभटः । ऋद्धिः-ममानेकलक्षकोटिगणनं धनमासीत् तदपि मया त्यक्तं अन्ये मुनयोऽधर्मणाः सन्तो दीक्षां जागृहुः । तप-अहं सिंह-निष्क्रीडितविमान-पंक्तिसर्वतोभद्र.... आदि-महातपोविधिविधाता मम जन्मैवं तपः कुर्वतो गतं, एते तु यतयोः नित्यभोजनरताः । वपुः-मम रूपाग्रे कामदेवोऽपि दासत्वं करोतित्यष्टमदाः ।* **मो. पा., टी. 27**

291. *सम्यक्त्वादिगुणानामायतनं गृहमावास आश्रय आधारकरणं निमित्तमायतनं भण्यते तद्विपक्षभूतमनायतनमिति ।* **द्र. सं., टी. 41**

292. *मिथ्यादेवो, मिथ्यादेवाराधका, मिथ्यातपो, मिथ्यातपस्वी, मिथ्यागमो, मिथ्यागमधराः पुरुषाश्चेत्युक्तलक्षणमनायतनषट्कम् ।* **द्र. सं., टी. 41**

293 *कुदेवगुरुशास्त्राणां तद्भक्तानां गृहे गतिः ।*
षडनायनतमित्येवं वदन्ति विदितागमाः ।। **चा.पा.टी.6 पर उद्धृत**

असर्वज्ञदेव का मंदिर, असर्वज्ञ का ज्ञान व असर्वज्ञ ज्ञान का धारक पुरुष, असर्वज्ञ ज्ञान के अनुकूल आचार और उस आचार के धारक पुरुष ये छह अनायतन हैं ।[294]

शंकादि आठ दोष - शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़दृष्टि, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य और अप्रभावना ये शंकादि आठ दोष हैं ।

इनके लक्षण निःकांक्षित आदि आठ अंगों से विपरीत जानना चाहिए ।

सम्यग्दर्शन को ठीक ढंग से समझने के लिए आवश्यक है कि उनके गुणों, अंगों, अतिचारों और दोषों को भी जान लिया जाए । इससे सम्यग्दृष्टि जीव अपने मार्ग से भटक नहीं पाता है । यदि कभी कोई ज्ञात या अज्ञात दोष लग जावे अथवा अतिचार हो जावे तो उसे गुरु के समक्ष ठीक-ठीक बतलाकर प्रायश्चित आदि कर लेना चाहिए । शंका-दोष, प्रभावना-अंग और उपगूहन-अंग को ठीक समझना चाहिए । 'शंका' का यह तात्पर्य नहीं है कि शास्त्र की बातें जानने के लिए 'प्रश्न' न किया जाये । इसी तरह 'प्रभावना' और 'उपगूहन' के नाम पर अंधविश्वास तथा अनाचार को बढ़ावा नहीं देना चाहिए ।

*****

294. *प्रभाचन्द्रस्त्वेवं वदति-मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राणि त्रीणि त्रयश्च तद्वन्तः पुरुषाः षडनायतानि । अथवा असर्वज्ञः असर्वज्ञायतनम्, असर्वज्ञज्ञानम्, असर्वज्ञज्ञानसमवेतपुरुषः, असर्वज्ञानुष्ठानम्, असर्वज्ञानुष्ठानसमवेतपुरुषश्चेति ।*

चा.प्र.टी.6 पर उद्धृत

सप्तम अध्याय

सम्यग्दृष्टि की विशेषताएँ

1. सभी भाव ज्ञानमय - ज्ञानमय भावों से ज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए ज्ञानियों के समस्त भाव वास्तव में ज्ञानमय ही होते हैं।[295]

2. सदा निरास्रव व अबंधक - राग, द्वेष और मोह ये आस्रव सम्यग्दृष्टि के नहीं होते, इसीलिए आस्रवभाव के बिना द्रव्य-प्रत्यय कर्म बंध के कारण नहीं होते। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय ये चार प्रकार के हेतु, आठ प्रकार के कर्मबंध के कारण कहे गये हैं उनमें भी रागादि भाव के बिना कर्मबंध नहीं होता है। इसलिए उनके अभाव में ज्ञानी को कर्म नहीं बँधते।[296]

ज्ञानी तो आस्रव भाव की भावना के अभिप्राय के अभाव के कारण निरास्रव ही हैं परंतु उसे भी जो प्रतिसमय द्रव्य-प्रत्यय अनेक प्रकार का पुद्गलकर्म बाँधते हैं, वहाँ क्षायोपशमिक ज्ञान का परिणमन ही कारण है क्योंकि वह अन्तर्मुहूर्त परिणामी है। इसलिए यथाख्यात चारित्र अवस्था के पहले उसे अवश्य ही राग भाव का सद्भाव होने से, वह ज्ञान बंध का कारण ही है।[297]

आत्मा जब ज्ञानी होता है तब स्वयं अपने समस्त बुद्धिपूर्वक राग को निरन्तर छोड़ता हुआ अर्थात् न करता हुआ और जो अबुद्धिपूर्वक राग है उसे भी जीतने के लिए बारंबार (ज्ञानानुभव रूप) स्वशक्ति को स्पर्श करता हुआ और इस प्रकार पर-परिणति रूप

---

295. *णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो।*
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया॥ स.सा. **128**

296. *रागो दोषो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स।*
तम्हा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति॥
हेदू चदुवियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादि तेसिमभावे ण बज्झंति॥ स.सा.,**177-178**

297. *ज्ञानी हि तावदास्रवभावभावनाभिप्रायाभावान्निरास्रव एव। यत्तु तस्यापि द्रव्यप्रत्ययाः प्रतिसमयमनेकप्रकारं पुद्गलकर्म प्रति बध्यन्ति तत्र ज्ञानगुणपरिणाम एव हेतुः। ...... तस्यान्तर्मुहूर्तविपरिणामित्वात् पुनः पुनरन्यतयास्ति परिणामः। स तु यथाख्यातचारित्रावस्थाया अधस्तादवश्यंभाविरागसद्भावात् बन्धहेतुरेव स्यात्।*
स.सा./आ.टी.**170-171**

समस्त प्रवृत्ति को उखाड़ता हुआ तथा ज्ञान के पूर्णभावरूप होता हुआ वास्तव में सदा निरास्रव है।[298]

ज्ञानी के यदि पूर्वबद्ध, द्रव्य प्रत्यय विद्यमान हैं, तो भले रहें, तथापि वह तो निरास्रव ही है, क्योंकि कर्मोदय का कार्य जो राग-द्वेष-मोह रूप आस्रव भाव हैं उनके अभाव में द्रव्य-प्रत्यय, बंध का कारण नहीं है।[299]

प्रश्न.- यथाख्यात चारित्र से पहले अन्तर्मुहूर्त के अनन्तर निर्विकल्प समाधि में स्थित रहना शक्य नहीं है। ऐसा होने पर ज्ञानी निरास्रव कैसे हो सकता है ?

उत्तर - ज्ञानी, ईहा-पूर्वक अर्थात् अभिप्रायपूर्वक रागादि विकल्प नहीं करता है, इसलिए वह निरास्रव ही है। किन्तु परम-समाधि के अनुष्ठान के अभाव में जबतक वह शुद्धात्मस्वरूप को देखने, जानने व आचरण करने में असमर्थ रहता है, तब तक उसके भी तत्संबंधी जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र हैं, वे जघन्यभाव से अर्थात् कषायभाव से अनीहितवृत्ति से स्वयं परिणमते हैं। उसके कारण वह भेदज्ञानी भी विविध प्रकार के पुण्य कर्म से बँधता है।[300]

स्वात्मतत्त्व में निष्ठ योगी की जब पर-पदार्थों से निवृत्ति होती है, तब उनके अच्छे -बुरे आदि विकल्पों का उसे अनुभव नहीं होता। तब वह योगी कर्मों से भी नही बँधता, किन्तु कर्मों से छूटता ही है। [301]

---

298. *संन्यस्यन्निबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयं, वारम्वारमबुद्धिपूवमपि तं, जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन्। उच्छिन्दन्परिवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णोभवन्आत्मा नित्यनिरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदास्यात्तदा ॥* स.सा. /क.**116.**

299. *ज्ञानिनो यदि द्रव्यप्रत्ययाः पूर्वबद्धाः सन्ति। सन्तु, तथापि स तु निरास्रव एव कर्मोदयकार्यस्य रागद्वेषमोहरूपस्यास्रवभावस्याभावे द्रव्यप्रत्ययानामबन्धहेतुत्वात्।* स.सा./आ.टी. **173-176**

300. *यथाख्यातचारित्राधस्तादन्तर्मुहूर्तान्तरं निर्विकल्पसमाधौ स्थातुं न शक्यत इति भणितं पूर्वम्। एवं सति कथं ज्ञानी निरास्रव इति चेत्, ज्ञानी तावदीहापूर्वरागादिविकल्पकरणाभावान्निरास्रव एव। किन्तु सोऽपि यावत्कालं परमसमाधेरनुष्ठानाभावे सति शुद्धात्मस्वरूपं द्रष्टुं ज्ञातुमनुचरितुं वासमर्थः तावत्कालं तस्यापि सम्बन्धि यद्दर्शनं ज्ञानं चारित्रं तज्जघन्यभावेन सकषायभावेन अनीहितवृत्त्या परिणमति, तेन करणेन स तु भेदज्ञानी.... विविधपुण्यकर्मणा बध्यते।* स.सा./ता.वृ.टी. **172**

301. *अगच्छंस्तद्विशेषाणामनभिज्ञश्च जायते।*
अज्ञाततद्विशेषस्तु बद्ध्यते न विमुच्यते ॥ इ. उ. **44**

3. कर्म करता हुआ भी वह उनसे बँधता नहीं - जैसे-कोई पुरुष मदिरा को अरतिभाव से पीता हुआ मतवाला नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञानी भी द्रव्य के उपभोग के प्रति अरति वर्तता हुआ बंध को प्राप्त नहीं होता। ज्ञानी जो कि सर्व द्रव्यों के प्रति राग को छोड़ने वाला है, वह कर्मों के मध्य में रहा हुआ हो तो भी कर्म रूपी रज से लिप्त नहीं होता-जैसे-सोना कीचड़ के बीच पड़ा हुआ हो तो भी लिप्त नहीं होता।[302]

जिस प्रकार जल में रहता हुआ भी कमलिनीपत्र अपने स्वभाव से ही जल से लिप्त नहीं होता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि पुरुष क्रोधादि कषाय और इन्द्रियों के विषयों में संलग्न भी अपने भावों से उनके साथ लिप्त नहीं होता।[303] योगसार में भी कहा है - जिस प्रकार स्वर्ण कीचड़ के बीच रहता हुआ भी कीचड़ से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार ज्ञानी विषय भोग करता हुआ भी विषयों में लिप्त नहीं होता।[304]

जिस प्रकार जो पतिव्रता नहीं है ऐसी युवती धाय अपने पति के साथ दिखावटी संबंध रखती है, जिस प्रकार कमल का पत्ता पानी के साथ दिखावटी संबंध रखता है और जिस प्रकार जली हुई रज्जु मात्र देखने में ही रज्जु है, उसी प्रकार ज्ञानी सम्यग्दृष्टि राज्य को भोगता हुआ भी पाप का भागी नहीं होता।[305]

4. सभी-कार्य निर्जरा के निमित्त हैं - सम्यग्दृष्टि जीव जो इन्द्रियों के द्वारा अचेतन तथा चेतन द्रव्यों का उपभोग करता है वह सब उसके लिए निर्जरा का निमित्त है।[306]

---

302. *जह मज्जं पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो ।*
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण बज्झदि तहेव ।।
णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
णो लिप्पदि रजएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं ।। स.सा. **196, 218**
विशेष यहाँ मदिरापान का दृष्टान्त विशेष व्याख्या सापेक्ष है । *संपादक*

303. *जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्तं सहावपयडीए ।*
तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो ।। भा.पा.**152**

304. *ज्ञानी विषयसंगेऽपि विषयैनैव लिप्यते ।*
कनकं मलमध्येऽपि न मलैरुपलिप्यते ।। यो.सा.**4/19**

305. *धात्री बालाऽसतीनाथपद्मिनीदलवारिवत् ।*
दग्धरज्जुवदाभासं भुञ्जन् राज्यं न पापभाक् । भा.पा.,टी/**152** पर उद्धृत

306. *उवभोगमिंदियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराणं ।*
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं ।। स.सा. **193**

ज्ञानी पुरुषों के इस अलौकिक चरित्र का कौन वर्णन कर सकता है । जिस आचरण से अज्ञानी बंध को प्राप्त होता है उसी आचरण से ज्ञानी कर्मों से छूट जाता है ।[307]

प्रश्न.- राग-द्वेष व मोह का अभाव होने पर भोग आदि निर्जरा के कारण कहे गये हैं, परन्तु सम्यग्दृष्टि के तो रागादि होते हैं इसलिए वे उसे निर्जरा के कारण कैसे हो सकते है ?

उत्तर - इस ग्रंथ में मुख्यवृत्ति से वीतराग सम्यग्दृष्टि का ग्रहण किया गया है । जो चौथे गुणस्थावर्ती सरागसम्यग्दृष्टि हैं उनका गौणवृत्ति से ग्रहण किया गया है । सराग सम्यग्दृष्टि संबंधी समाधान पहले ही दे दिया गया है । वह ऐसे कि मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा असंयत सम्यग्दृष्टि को अनन्तानुबंधी-चतुष्क और मिथ्यात्वोदयजन्य रागादिक तथा श्रावक को अप्रत्याख्यान-चतुष्कजनित रागादि नहीं होते हैं । सम्यग्दृष्टि की निर्जरा संवरपूर्वक होती है और मिथ्यादृष्टि की गजस्नानवत् बंधपूर्वक होती है । इस कारण मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि अबंधक है ।[308]

5. कुध्यान भी कुगति के कारण नही - चार प्रकार का आर्त्तध्यान यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीवों को तिर्यञ्चगति का कारण होता है तथापि बद्धायुष्क को छोड़कर अन्य सम्यग्दृष्टियों को वह तिर्यंचगति का कारण नहीं होता है । इसी प्रकार रौद्रध्यान भी मिथ्यादृष्टियों को नरकगति का कारण होता है, परंतु बद्धायुष्क को छोड़कर अन्य सम्यग्दृष्टियों को वह नरकगति का कारण नहीं होता ।[309]

---

307. *अलौकिकमहो वृत्तं ज्ञानिनः केन वर्ण्यते ।*
अज्ञानी बध्यते यत्र ज्ञानी तत्रैव मुच्यते ॥ **ज्ञा. 32 / 38**

308. *अत्राह शिष्यः-रागद्वेषमोहाभावे सति निर्जराकारणं भणितं, सम्यग्दृष्टेस्तु रागादयः सन्ति, ततः कथं निर्जराकारणं भवतीति ? अस्मिन्पूर्वपक्षे परिहारः-अत्र ग्रन्थे वस्तुवृत्त्या वीतरागसम्यग्दृष्टेर्ग्रहणं यस्तु चतुर्थगुणस्थानवर्तीसरागसम्यग्दृष्टिस्तस्य गौणवृत्त्या ग्रहणं, तत्र तु परिहारः पूर्वमेव भणितः । कथमिति चेत् ? मिथ्यादृष्टेः सकाशादसंयतसम्यग्दृष्टेः अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभोदयजनिताः, श्रावकस्य चाऽप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभोदयजनिता रागादयो न सन्तीत्यादि । किं च सम्यग्दृष्टेः संवरपूर्विका निर्जरा भवति, मिथ्यादृष्टेस्तु गजस्नानवत् बन्धपूर्विका भवति । तेन कारणेन मिथ्यादृष्ट्यपेक्षा सम्यग्दृष्टिरबन्धक इति ।*
स.सा. / ता.वृ.टी **193**

309. *चतुर्विधमार्त्तध्यानम् ।......यद्यपि मिथ्यादृष्टीनां तिर्यग्गतिकारणं भवति तथापि बद्धायुष्कं विहाय सम्यग्दृष्टीनां न भवति ।..... रौद्रध्यानं .... तच्च मिथ्यादृष्टीनां नरकगतिकारणमपि बद्धायुष्कं विहाय सम्यग्दृष्टीनां तत्कारणं न भवति ।*
द्र. स., टी. **48**

प्रश्न.- आर्त्तध्यान सम्यग्दृष्टि को मिथ्यादृष्टि की भाँति तिर्यंच गति का कारण क्यों नहीं होता ?

उत्तर - सम्यग्दृष्टि जीवों के 'निज शुद्ध आत्मा ही उपादेय है' ऐसी भावना के कारण तिर्यंचगति का कारण रूप संक्लेश नहीं होता ।[310]

6. वर्तमान जीवन में ही मुक्तवत् - ज्ञानी कर्म को न तो करता है और न भोगता है, वह कर्म के स्वभाव को मात्र जानता ही है । इस प्रकार मात्र जानता हुआ करने और भोगने के अभाव के कारण, शुद्ध स्वभाव में निश्चल ऐसा वह वास्तव में जीवन्मुक्त ही है ।[311]

जिसको विशुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ है वह पुण्यात्मा मुक्त है, ऐसा मैं मानता हूँ, क्योंकि सम्यग्दर्शन ही मोक्ष का मुख्य अंग कहा गया है ।[312]

सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में अंतर

1. श्रद्धान व अनुभव आदि में अंतर - मिथ्यादृष्टि भोगों के निमित्तरूप धर्म की श्रद्धा करता है, उसी की प्रतीति करता है, उसी की रुचि करता है और उसी का स्पर्श करता है, किन्तु कर्मक्षय के निमित्तरूप धर्म की श्रद्धा आदि नही करता ।[313]

सम्यग्दृष्टि पुरुष समय को वैराग्य और ज्ञान भाव से व्यतीत करते हैं । किन्तु मिथ्यादृष्टि पुरुष दुर्भाव, आलस्य और कलह से अपना समय व्यतीत करते हैं ।[314]

वचन और शरीर में ही जिसकी भ्रान्ति हो रही है, जो उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं समझता ऐसा बहिरात्मा वचन और शरीर में ही आत्मा का आरोपण करता है । परंतु

---

310. *कस्मादिति चेत् स्वशुद्धात्मैवोपादेय इति विशिष्टभावनाबलेन तत्कारणभूतसंक्लेशा-भावादिति ।* द्र. सं., टी. **48**

311. *ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म, जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावम् ।*
जानन्परं करणवेदनयोरभावाच्छुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ॥
स.सा./क. **198**

312. *मन्ये मुक्तः स पुण्यात्मा विशुद्धं यस्य दर्शनम् ।*
यतस्तदेव मुक्त्यङ्गमग्रिमं परिकीर्तितम् ॥ ज्ञा. **6/57**

313. *सद्दहदि य पत्तियदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि ।*
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥ स.सा. **275**

314. *सम्माइट्ठी कालं बोल्लइ वेरग्गणाणभावेण ।*
मिच्छाइट्ठी वांछा दुब्भावालस्सकलहेहिं ॥ र.सा. **53**

ज्ञानी पुरुष इन शरीर और वचन के स्वरूप को आत्मा से भिन्न जानता है ।[315]

सम्यग्दृष्टि जीव कर्म के उदयवश प्राप्त सुख-दुःख को, राग-द्वेष नहीं करते हुए हेयबुद्धि से भोगता है । 'मैं सुखी - मैं दुःखी' इत्यादि प्रत्यय के द्वारा तन्मय होकर नहीं भोगता परंतु मिथ्यादृष्टि उसी सुख-दुःख को उपादेय बुद्धि से 'मैं सुखी, मैं दुःखी' इत्यादि प्रत्यय के द्वारा तन्मय होकर भोगता है ।[316]

अज्ञानियों के हितकर माला, स्त्री, चन्दन आदि पदार्थ हैं तथा इनके कारणभूत दान, पूजा आदि व्यवहार धर्म भी हैं परंतु अहितकर विष, कण्टक आदि बाह्य पदार्थ हैं । परंतु ज्ञानी का हित तो अक्षय - अनन्त सुख व उसका कारणभूत निश्चय-रत्नत्रय रूप परिणत परमात्म द्रव्य है हित और अहित आकुलता को उत्पन्न करनेवाला दुःख तथा उनका कारणभूत मिथ्यात्व व रागादि रूप से परिणत आत्म द्रव्य है ।[317]

2. पुण्य-पापादि पदार्थ के कर्तृत्व में अन्तर - किस पदार्थ का कर्त्ता कौन है ? इस बात का कथन करते हैं । बहिरात्मा प्रधानतः आस्रव, बंध और पाप इन तीन पदार्थों का कर्त्ता है । किसी समय जब मिथ्यात्व व कषाय का मंद उदय होता है तब आगामी भोगों की इच्छा आदि रूप निदान बंध से पापानुबंधी पुण्य पदार्थ का भी कर्त्ता होता है । जो सम्यग्दृष्टि जीव है वह प्रधानतः संवर, निर्जरा और मोक्ष इन तीन पदार्थों का कर्ता होता है और किसी समय जब रागादि विभावों से रहित परम सामायिक में स्थित रहने में समर्थ नही होता उस समय विषय- कषायों से उत्पन्न दुर्ध्यान को रोकने के लिए, संसार

---

315. *शरीरे वाचि चात्मानं संधत्ते वाक्शरीरयोः ।*
भ्रान्तोऽभ्रान्तः पुनस्तत्त्वं पृथगेषां विबुध्यते ॥ स. श. **54**

316. *सुखं दुःखं वा समुदीर्णं सत् सम्यग्दृष्टिर्जीवो रागद्वेषौ न कुर्वन् हेयबुद्ध्या वेदयति । न च तन्मयो भूत्वा, अहं सुखी दुःखीत्याद्यहमिति प्रत्ययेनानुभवति ।.... मिथ्यादृष्टेः पुनः उपादेयबुद्ध्या, सुख्यहं दुःख्यहमिति प्रत्ययेन ।* स.सा./ता.वृ.टी.**194**

317. *अज्ञानिनां हितं स्रग्वनिताचन्दनादि तत्कारणं दानपूजादि, अहितमहिविषकण्टकादि। संज्ञानिनां पुनरक्षयानन्तसुखं तत्कारणभूतं निश्चयरत्नत्रयपरिणतं परमात्मद्रव्यं च हितमहितं पुनराकुलत्वोत्पादकं दुःखं तत्कारणभूतं मिथ्यात्वरागादि-परिणतमात्मद्रव्यम् ।* पं.का./ता.वृ.टी.**125**

की स्थिति का नाश करता हुआ पुण्यानुबंधी तीर्थंकर प्रकृति आदि विशिष्ट पदार्थ का कर्त्ता होता है ।[318]

3. पुण्य में अंतर - जब मिथ्यादृष्टि जीव नवीन पुण्य कर्म के निमित्तभूत शुभकर्मानुष्ठानों को भोगाकांक्षा के निदान रूप से करता है । तब वह पापानुबंधी पुण्यरूप राजा कालान्तर में उसको विषय-भोग प्रदान करता है । निदानबंधपूर्वक प्राप्त भोग भी रावण आदि की भाँति उसको अगले भव में नरक आदि दुःखों की परंपरा को प्राप्त कराते हैं अर्थात् निदानबंध पूर्वक किये गये पुण्यरूप शुभानुष्ठान तीसरे भव में नरकादि गतियों के कारण होने से पापानुबंधी पुण्य कहलाते हैं ।

सम्यग्दृष्टि जीव निर्विकल्प समाधि का अभाव होने के कारण अशक्यानुष्ठान रूप विषय-कषाय वञ्चनार्थ यद्यपि व्रत, शील, दान, पूजादि शुभ कर्मानुष्ठान करता है परंतु मिथ्यादृष्टि की भाँति भोगाकांक्षारूप निदानबंध से उसका सेवन नहीं करता है । उसका यह कर्म पुण्यानुबंधी है, भवान्तर में जिसके अभ्युदय रूप से उदय में आने पर भी वह सम्यग्दृष्टि पूर्वभव में भावित भेद-विज्ञान की वासना के बल से भोगों की आकांक्षारूप निदान या रागादि परिणाम नहीं करता है, जैसे कि भरतेश्वर आदि अर्थात् निदान-बंध रहित बाँधा गया पुण्य सदा पुण्यरूप से ही फलता है । पाप का कारण कदाचित् भी नहीं होता इसलिए पुण्यानुबंधी पुण्य कहलाता है ।[319]

---

318. *इदानीं कस्य पदार्थस्य कः कर्त्तेति कथ्यते.... बहिरात्मा भण्यते, स चास्रवबंधपाप-पदार्थत्रयस्य कर्त्ता भवति । क्वापि काले पुनर्मन्दमिथ्यात्वमन्दकषायोदये सति भोगाकांक्षादिनिदानबन्धेन भाविकाले पापानुबन्धिपुण्यपदार्थस्यापि कर्त्ता भवति । यस्तु.... सम्यग्दृष्टिः स संवरनिर्जरामोक्ष-पदार्थत्रयस्य कर्त्ता भवति । रागादिविभाव-रहितपरमसामायिके यदा स्थातुं समर्थो न भवति तदा विषय-कषायोत्पन्न-दुर्ध्यानवञ्चनार्थं संसारस्थितिच्छेदंकुर्वन् पुण्यानुबन्धितीर्थंकरनामप्रकृत्यादिविशिष्ट-पुण्यपदार्थस्य कर्त्ता भवति ।* **द्र.सं.,टी.अ.2, चूलिका.पृ.66**

319. *कोऽपि जीवोऽभि नवपुण्यकर्मनिमित्तं भोगाकाङ्क्षानिदानरूपेण शुभकर्मानुष्ठानं करोति सोऽपि पापानुबन्धि-पुण्यराजा कालान्तरे भोगान् ददाति । तेऽपि निदानबंधेन प्राप्ता भोगा रावणादिवन्नारकादिदुःखपरंपरां प्राप्यन्तीति भावार्थः । ....कोऽपि सम्यग्दृष्टि-जीवो निर्विकल्पसमाधेरभावत् अशक्यानुष्ठानेन विषय-कषायवञ्चनार्थं यद्यपि व्रतशीलदानपूजादि-शुभकर्मानुष्ठानं करोति तथापि भोगाकाङ्क्षारूपनिदानबन्धेन तत्पुण्यकर्मानुष्ठानं न सेवते । तदपि पुण्यानुबन्धिपुण्यकर्म भवान्तरे....अभ्युदयरूपे-णोदयागतमपि पूर्वभव-भावितभेदविज्ञानवासनाबलेन...भोगाकाङ्क्षानिदानरूपान् रागादिपरिणामान्न ददाति भरतेश्वरादीनामिव ।* **स.सा./ता.वृ.टी.224-227**

4. धर्मसेवन के अभिप्राय में अंतर

प्रश्न.- सम्यग्दृष्टि जीव के तो पुण्य और पाप दोनों हेय हैं, फिर वह पुण्य कैसे करता है ?

उत्तर - जैसे कोई मनुष्य अन्य देश में विद्यमान किसी मनोहर स्त्री के पास से आये हुए मनुष्यों का उस स्त्री की प्राप्ति के लिए दान-सम्मान आदि करता है; ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव भी वास्तव में तो निज शुद्धात्मा की प्राप्ति के लिए उसी को ही भाता है ।

परंतु जब चारित्रमोह के उदय से उस निजशुद्धात्म-भावना में असमर्थ होता है, तब दोष रहित ऐसे परमात्मस्वरूप अर्हंतों व सिद्धों की तथा उनके आराधक आचार्य, उपाध्याय और साधु की, परमात्मपद की प्राप्ति के लिए और विषय-कषायों को दूर करने के लिए पूजा, दान आदि से अथवा गुणों की स्तुति आदि से परमभक्ति करता है ।[320]

5. कर्मक्षपणा में अंतर - जो कर्म अज्ञानी लक्षकोटि भवों में नष्ट करता है, वह कर्म ज्ञानी त्रिगुप्ति के द्वारा अन्तर्मुहूर्तमात्र में नष्ट कर देता है ।[321]

करोड़ों भवों के संचित कर्मों को साधुजन सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाने पर एक समय में निर्जीर्ण कर देते हैं ।[322]

विशेषार्थ - सम्यक्त्व से युक्त जीव ही सच्चा ज्ञानी है ऐसे ज्ञानी का कथन जैनागम में प्राय: छ: प्रकार से किया गया है, जैसे -

1. ज्ञान से संपन्न समस्त जीव ज्ञानी हैं और जीव से इतर जड़ पदार्थ अज्ञानी है ।
2. क्षायोपशमिक-क्षायिक भाव की अपेक्षा यथायोग्य पाँच सम्यग्ज्ञानों से युक्त जीव

---

320. *सम्यग्दृष्टिर्जीवस्य पुण्यपापद्वयमपि हेयम् । कथं पुण्यं करोतीति ? तत्र युक्तिमाह यथा कोऽपि देशान्तरस्थमनोहरस्त्रीसमीपादागतपुरुषाणां तदर्थे दानसन्मानादिकं करोति तथा सम्यग्दृष्टिरप्युपादेयरुपेण स्वशुद्धात्मानमेव भावयति चारित्रमोहोदयात्तत्रा-समर्थः सन् निर्दोषपरमात्मस्वरूपाणामर्हत्सिद्धानां तदाराधकाचार्योपाध्यायसाधूनां च परमात्मपदप्राप्तर्थं विषयकषायवञ्चनार्थं च दानपूजादिना गुणस्तवनादिना वा परमभक्तिं करोति ।* द्र. सं., टी. **38**

321. *जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसयसहस्सकोडीहिं ।*
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि अंतोमुहुत्तेण ।। भ.आ.**107**

322. *जं बद्धमसंखेज्जाहिं रयं भवसदसहस्सकोडीहिं ।*
सम्मत्तुप्पत्तीए खवेइ तं एयसमयेण ।। भ.आ. **716**

ज्ञानी हैं, शेष तीन मिथ्याज्ञान से युक्त जीव अज्ञानी हैं।

3. जिन्होंने ज्ञान को अपनी आत्मा में उतार लिया है अर्थात् चर्चा से चर्या में जिसका ज्ञान आ चुका है। ऐसे समस्त संयमी जीव ज्ञानी हैं। यह कथन चरणानुयोग प्रधान है।

4. जो त्रिगुप्ति से युक्त, अभेद-रत्नत्रयवान्, सप्तमादि गुणस्थानवर्ती मुनिराज हैं वे ज्ञानी हैं, शेष अज्ञानी हैं। यह कथन द्रव्यानुयोग प्रधान है।

5. संयमघाती अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण रूप बारह कषायों से जो पूर्णतः रहित हैं वे मुनिराज ज्ञानी हैं और शेष उक्त कषायवान् जीव अज्ञानी हैं। यह कथन करणानुयोग प्रधान है।

6. जिन्होंने ज्ञानावरणीय कर्म के समस्त समूह को नष्ट कर दिया है वे जीव ज्ञानी हैं, शेष अज्ञानी हैं। यह कथन औदयिक भाव प्रधान है।

इस प्रकार अनेक प्रकार के ज्ञानी जीव होते हैं। इनमें से यहाँ चौथे नंबर पर कहे गये सकल त्रिगुप्ति-गुप्त मुनिराज ही ग्राह्य हैं। ऐसा सर्वत्र जानना चाहिए।

वस्तुतः सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में अन्तर करना कभी-कभी बड़ा कठिन हो जाता है क्योंकि बाह्य-क्रियाओं के आधार पर निर्णय नहीं किया जा सकता है। यह अंतरंग भावों से निर्णीत होता है जिसके लिए निरंतर स्वयं की आलोचना करना चाहिए।

*****

अष्टम अध्याय

उपसंहार

प्रस्तुत कृति का निष्कर्ष यह है कि हम अनादि काल से चर्तुगति रूप संसार में परिभ्रमण कर रहे हैं जिसका मुख्य कारण मिथ्यादर्शन है। मिथ्यात्व के समान कोई अन्य अकल्याणकारी नहीं है तथा सम्यग्दर्शन के समान कोई कल्याणकारी नहीं है। मिथ्यात्व को त्याग कर सम्यक्त्व को प्राप्त करो। क्योंकि सम्यक्त्व के साथ नरक व नरक जैसे दु:ख स्वीकार्य हैं, अच्छे हैं परंतु सम्यक्त्व के बिना अर्थात् मिथ्यात्व के साथ स्वर्ग या स्वर्ग जैसे सुख भी श्रेष्ठ नहीं हैं। क्योंकि मिथ्यात्व के साथ प्राप्त देव -पर्याय के पश्चात् एकेन्द्रियों में भी जन्म हो सकता है किन्तु सम्यक्त्व के साथ नरक से निकला हुआ जीव नियम से उत्तम गति को प्राप्त करता है। अत: हमें सम्यक्त्व की प्राप्ति में, रक्षा में व वृद्धि में निरंतर संलग्न रहना चाहिए। क्योंकि सम्यक्त्व के होने पर ज्ञान और चारित्र नियम से सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाते हैं किन्तु सम्यक्त्व के बिना वे मिथ्याज्ञान व मिथ्याचारित्र ही रहते हैं। एक बार सम्यग्दर्शन हो जाने पर कभी न कभी नियम से ज्ञान और चारित्र होते ही हैं, पर सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान एवं चारित्र कभी भी सम्यक्पने को प्राप्त नहीं होते हैं, अत: सम्यक्त्व को जानना आवश्यक है क्योंकि इसके जाने बिना की गई श्रद्धा, विश्वास, आस्था भी अश्रद्धा, अविश्वास, अनास्था में परिवर्तित हो जीव को मिथ्यात्व के दर्जे में खड़ा कर सकती है।

जैनाचार्यों ने इसे समझाने के विभिन्न तरीकों व भाषाओं का प्रयोग किया है। यथा - आगम ग्रंथों में इसे अंतरंग एवं बहिरंग हेतुओं के माध्यम से समझाया गया है। अंतरंग हेतुओं को समझाते हुए कहा है कि दर्शन मोह की तीन व चारित्रमोह की अनंतानुबंधी क्रोधादि चार, ऐसी सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम व क्षय से क्रमश: औपशमिक, क्षायोपशमिक, व क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है। इसके उत्पन्न होने में जातिस्मरण, जिनबिंबदर्शन, धर्मश्रवण आदि बाह्य निमित्त होते हैं। सम्यग्दर्शन हो जाने पर सच्चे देव, शास्त्र, गुरु, सात तत्त्व, छः द्रव्य, नव पदार्थ व दया धर्मादि पर श्रद्धान अवश्यंभावी हो जाता है। बिना देव-शास्त्र-गुरु के की गई अशेष द्रव्यों, अस्तिकायों, तत्त्वों या पदार्थों के प्रति श्रद्धा से भी सम्यग्दर्शन संभव नहीं, क्योंकि जिसकी सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के प्रति श्रद्धा नहीं उसकी अन्य तत्त्वों आदि पर कैसे श्रद्धा हो सकती है ? क्योंकि सच्चे देव, शास्त्र व गुरु के उपदेश के बिना उक्त तत्त्वों आदि का ज्ञान भी संभव नहीं हैं और इनके ज्ञान बिना, श्रद्धान भी संभव नहीं है। जीवादि तत्त्वों के मुख्य वक्ता सच्चे देव, शास्त्र और गुरु ही हैं, अन्य कोई नहीं, कहा भी है -

'वक्तृप्रामाण्याद्वचनप्रामाण्यम्' अर्थात् वक्ता के प्रमाणित होने पर ही उसके वचन

प्रामाणिक होते हैं। अतः सच्चे देव, शास्त्र व गुरु के प्रति श्रद्धा रखते हुऐ उनके द्वारा उपदिष्ट तत्त्व, पदार्थ, द्रव्य, अस्तिकाय आदि पर श्रद्धा रखना चाहिए। यही व्यवहार-सम्यग्दर्शन है। व्यवहार-सम्यग्दर्शन होने पर सम्यक्त्वाचरण चारित्र प्रकट होता है। व्यवहार सम्यग्दर्शन को ही सराग सम्यग्दर्शन कहते हैं। ग्रंथों में लगभग इन दोनों की समान परिभाषाएँ मिलती हैं तथा वे मुनियों और गृहस्थों दोनों को हो सकते हैं।

आगम-ग्रंथों में औपशमिक व क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन को सराग व क्षायिक सम्यग्दर्शन को वीतराग सम्यग्दर्शन कहा है। किन्तु किन्हीं-किन्हीं आचार्यों ने मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने पर ही वीतराग सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति मानी है। पूज्य अकलंक देव ने सराग सम्यग्दर्शन को साधन रूप ही माना है जबकि वीतराग सम्यग्दर्शन को साधन व साध्य दोनों रूप से स्वीकार किया है। इसका तात्पर्य यह है कि आगमिक वीतराग सम्यग्दर्शन, सराग सम्यग्दृष्टियों को साध्य रूप है तथा आध्यात्मिक वीतराग सम्यग्दर्शन के लिए या मोहनीय कर्म के क्षय से होने वाले वीतराग सम्यग्दर्शन के लिए साधन रूप है। यह आगमिक सराग व वीतराग सम्यग्दर्शन चौथें से छठवें गुणस्थान तक, आध्यात्मिक दृष्टि से सराग/व्यवहार सम्यग्दर्शन ही है। क्योंकि इसमें पृथक-पृथक दो द्रव्यों की भेद विवक्षा पाई जाती है। इनके होने पर ही आध्यात्मिक वीतराग या निश्चय सम्यग्दर्शन प्रकट हो सकता है। क्योंकि व्यवहार और निश्चय में साध्य-साधक या कारण-कार्य सम्बन्ध है। अतः व्यवहार सम्यग्दर्शन कारण (साधन) रूप है तथा निश्चय सम्यग्दर्शन कार्य / साध्य रूप। न्यायशास्त्र के अनुसार कारणपूर्वक ही कार्य होता है, बिना कारण के एक भी कार्य नहीं होता। अतः सिद्ध है कि व्यवहार सम्यग्दर्शनपूर्वक ही निश्चय सम्यग्दर्शन होता है। बिना व्यवहार सम्यग्दर्शन हुए आज तक कोई भी निश्चय सम्यग्दर्शन को प्राप्त नहीं हो सका है।

अध्यात्मग्रंथों में निश्चय सम्यग्दर्शन का कथन दो प्रकार से प्राप्त होता हैं। 1. वीतराग चारित्र के अविनाभागी रूप वीतराग / निश्चय सम्यग्दर्शन तथा 2. तत्त्वरुचि रूप सम्यग्दर्शन जिसे किन्हीं-किन्हीं आचार्यों ने परंपरा से निश्चय सम्यग्दर्शन कहा है। परंतु वे ही आचार्य उसे मुख्यवृत्ति की अपेक्षा वीतराग चारित्र के साधन व्यवहार या सराग सम्यग्दर्शन कहते है। क्योंकि गृहस्थों के चौथे-पाँचवें गुणस्थानों में तथा मुनियों के छट्ठे गुणस्थान में बुद्धि-पूर्वक राग होने से सराग सम्यक्त्व के साथ अन्यथानुपपत्ति पाई जाती है अर्थात् सराग सम्यग्दर्शन ही पाया जाता है अन्यथा अन्य प्रकार से वीतराग सम्यग्दर्शन की अनुत्पत्ति है। सप्तम अप्रमत्त गुणस्थावर्ती मुनियों के वीतराग चारित्र के साथ बुद्धिपूर्वक शुभाशुभ राग न होने के कारण वीतराग सम्यग्दर्शन पाया जाता है, क्योंकि यहाँ वीतराग सम्यक्त्व के साथ अन्यथानुपपत्ति अर्थात् यहाँ से लेकर आगे के सभी गुणस्थानों में वीतराग सम्यग्दर्शन ही पाया जाता है। दूसरे प्रकार के सराग सम्यग्दर्शन की यहाँ उत्पत्ति नहीं है।

वस्तुत: सराग सम्यग्दर्शन में भी यह वीतराग संज्ञा सम्यग्दर्शन के कारण नहीं किन्तु चारित्र व चारित्रमोहनीय के कारण से ही आयी है क्योंकि चारित्र मोह की **25** कर्म-प्रकृतियाँ ही राग और द्वेष में समाविष्ट हैं; यथा-माया, लोभ, हास्य, रति, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसंक वेद राग में तथा क्रोध, मान, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा द्वेष में संगृहीत हो जाती हैं। अत: राग सहित चारित्र वाला सम्यग्दर्शन सराग सम्यग्दर्शन है तथा संज्वलन के मंदोदय में पाया जाने वाला बुद्धिपूर्वक राग से रहित चारित्र वाला सम्यग्दर्शन वीतराग सम्यग्दर्शन कहलाता है। यह क्षायोपशमिक वीतराग सम्यग्दर्शन स्वस्थान अप्रमत्त गुणस्थान में ही पाया जाता है तथा क्षायिक वीतराग सम्यग्दर्शन स्वस्थान व सातिशय दोनों अप्रमत्त गुणस्थान को आदि लेकर पाया जाता है एवं द्वितीयोपशम वीतराग सम्यग्दर्शन प्रतिष्ठापन की अपेक्षा सातिशय अप्रमत्त को आदि लेकर आगे के सभी गुणस्थानों में पाया जाता है।

तात्पर्य यह है कि आध्यात्मिक ग्रंथों में इस उपशम सम्यग्दर्शन को भी वीतराग सम्यग्दर्शन माना गया है। इस प्रकार सराग व वीतराग सम्यग्दर्शन सम्यक्त्व की अपेक्षा से भी समान नहीं है, क्योंकि ज्ञान व चारित्र के विषय भेद की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन में भी तरतम-भाव रूप भेद पाया जाता है। ये दोनों सम्यग्दर्शन युगपत् एक साथ भी नहीं पाये जाते हैं अन्यथा संकर दोष आ जायेगा। अर्थात् दोनों मिश्र रूप हो जायेंगे। अत: ऐसा भी नहीं हो सकता है।

अनन्तानुबंधी कषाय-जन्य राग के अभाव से होने वाली आंशिक वीतरागता भी यहाँ ग्राह्य नहीं है क्योंकि अनन्तानुबंधी कषाय के अभाव से होने वाले चारित्र को सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहा गया है फिर भी यह चारित्र, चारित्र संज्ञा को प्राप्त नहीं होता है ऐसा सिद्धांतचक्रवर्ती नेमिचंद्राचार्य ने गोम्मटसार जीवकाण्ड में कहा है। अन्यथा देव, नारकियों के भी चारित्र मानना पड़ेगा अथवा क्षायोपशमिक भाव के **19** भेद मानने पड़ेंगे अथवा अनन्तानुबंधी का अभाव स्थाई रहने से स्थाई मानना पड़ेगा जिससे उसे सराग भाव कभी भी नहीं बन सकेगा अथवा कहो कि अनन्तानुबंधी के अभावजन्य वीतराग भाव होता है और अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन व नोकषाय जन्य राग भाव उसे पाया जाता है तो ऐसा मानने पर फिर सराग व वीतराग भाव युगपत् मानने पड़ेंगे जिससे कि उपरोक्त संकर दोष आयेगा। हाँ, यदि इसे आगमिक दृष्टि से देखा जाये तो इसमें भेद-दृष्टि संभव है। अत: भेद विवक्षावश उसे **41**, **51**, **55** कर्म-प्रकृतियों का संवर करने वाला राग का अभाव ही है। पर मात्र आध्यात्मिक दृष्टि से ग्राह्य नहीं है क्योंकि अध्यात्म अभेद -विवक्षा से कथन करता है। इस विवक्षा में **41....** आदि प्रकृतियों के संवर करने वाली वीतरागता भी ग्राह्य नहीं है क्योंकि अध्यात्म ग्रंथों में स्थूल रूप से ही **4**, **5**, **6** गुणस्थानों में सराग सम्यग्दर्शन के साथ अन्यथानुपपत्ति मानी गई है। यदि इसे आंशिक वीतरागता मानें तो अध्यात्मशास्त्र का उपरोक्त कथन बाधित हो जायेगा किन्तु यह संभव नहीं है क्योंकि आगम पूर्वापर विरोध-

रहित होता है।

इस तरह आगमिक और आध्यात्मिक सराग-वीतराग सम्यग्दर्शन को समझाने का पूर्ण प्रयास किया है। निश्चित पाठकगण इसे पढ़कर अपनी आस्था को निर्मल बनाते हुए सम्यग्दर्शन की प्राप्ति, रक्षा व वृद्धि कर पश्चात् सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र को प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त करेंगे, यही हमारी हार्दिक भावना है।

इस आलेख में हमने जो कुछ भी लिखा है वह सभी निर्ग्रंथ दिगंबराचार्यों के ग्रंथों व कोषकारों का है, मेरा कुछ भी नहीं है। मैंने मात्र अपने योग व उपयोग का सम्यक् सदुपयोग करते हुए स्व-पर उपकारार्थ यह आलेख लिखा है।

इत्यलं विस्तरेण

*****

चूलिका

श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे दिगम्बरकुन्दकुन्दाचार्यपरम्परायां सन्मार्गदिवाकरस्य श्री 108 विमलसागराचार्यस्य शिष्येण श्रमणसंस्कृत्युन्नायकेन स्वजन्मना बुन्देलखण्डस्य पथरियाग्रामं समलङ्कृतेन श्री 108 विरागसागराचार्येण अस्य सम्यग्दर्शनग्रन्थस्य लेखनकार्यं 2058 विक्रम-संवत्सरे, वीरनिर्वाणसंवत् 2527 तमे वर्षे ज्येष्ठमासस्य शुक्लपक्षे श्रुतपंचमी-तिथौ (27.5.2001 ईसवीयतिथौ) रविवासरे परिसमाप्तम् ।

अस्य संशोधन-प्रस्तावनादिलेखनकार्यं काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य पूर्वसंस्कृतविभागा-ध्यक्षेण, पूर्व-अखिलभारतवर्षीयदिगम्बरजैनविद्वत्परिषद्मन्त्रिणा, प्राकृत-जैनदर्शन-साहित्यविषयेष्वाचार्योपाधिधारिणा प्रोफेसर -डॉ.सुदर्शनलाल जैनगृहस्थाचार्येण वाराणसी नगरे वीरनिर्वाणसंवत् 2529 तमे वर्षे (4.11.2002 ईसवीये)कार्तिकमासस्य कृष्णपक्षे प्रतिपत्-तिथौ (दीपावली तिथौ) रविवासरे सुसम्पादितम् ।

*****

परिशिष्ट

संकेत-सूचि एवं संदर्भ-ग्रंथ सूची

क्रम	संकेताक्षर	ग्रंथ, लेखक एवं प्रकाशक
1.	*अ.ग.श्रा.*	*अमितगति-श्रावकाचार, आचार्य अमितगति, दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत वि.सं.*2484
2.	*अन.ध.*	*अनगारधर्मामृत, पं.आशाधर, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली,* 1927
3.	*आ. अनु.*	*आत्मानुशासन, आचार्य गुणभद्र, सनातन जैन ग्रंथमाला,* 1904
4.	*आ. सा.*	*आचारसार, आचार्य वीरनन्दी, गजरथ समिति अशोकनगर*
5.	*इ. उ.*	*इष्टोपदेश, आचार्यपूज्यपाद, वीरसेवामन्दिर, दिल्ली.*
6.	*कषा.पा./क.पा.*	*कषाय पाहुड*
7.	*का. अ.*	*कार्तिकेयानुप्रेक्षा, मुनि श्री कार्तिकेय स्वामी, श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, आगास*
8.	*क्ष. सा.*	*क्षपणासार, आचार्यश्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती, श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, आगास*
9.	*गो. क.*	*गोम्मटसारकर्मकाण्ड, आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली*
10.	*गो.क. / जी.प्र.*	*गोम्मटसार कर्मकाण्ड, जीवतत्त्व-प्रदीपिका टीका, टीकाकार-अभयचन्द्राचार्य, जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्थान, कलकत्ता*
11.	*गो. जी.*	*गोम्मटसारजीवकाण्ड, आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली.*
12.	*गो. जी./जी. प्र.*	*गोम्मटसारजीवकाण्ड, जीवतत्त्व - प्रदीपिका टीका, टीकाकार-अभयचन्द्राचार्य, जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता*
13.	चा. पा.	चारित्रपाहुड, श्रीकुंदकुंद स्वामी, श्री अनेकान्त विद्वत् परिषद्, लोहारिया

14.	जै. सि. को.	जैनेन्द्रसिद्धांत कोश, क्षु. श्री जिनेन्द्रवार्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1987
15.	ज्ञा.	ज्ञानार्णव, आचार्य शुभचन्द्र, श्रीपरमश्रुत प्रभावक मण्डल, आगास.
16.	ज्ञा. सा.	ज्ञानसार, मुनि पद्मसिंह, भारतीय दिगम्बर जैन ग्रंथमाला, बंबई, वि.सं. 1975
17.	त. अनु.	तत्त्वानुशासन, आचार्य नागसेन, वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट, दिल्ली, 1963
18.	त. सू.	तत्त्वार्थसूत्र, आचार्य उमास्वामी, श्री वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, वाराणसी, 1991
19.	द. पा.	दर्शनपाहुड, आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी, श्री अनेकान्त विद्वत् परिषद, लोहारिया
20.	द्र. सं.	द्रव्यसंग्रह, नेमिचन्द्राचार्य, दिल्ली 1953
21.	द्र.सं.टी.	द्रव्यसंग्रह - टीका, श्री बम्हदेवसूरि, श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, आगास
22.	ध.	धवला, षट्खण्डागम-टीका, आचार्य श्रीवीरसेन स्वामी, जीवराज ग्रंथमाला,सोलापुर
23.	न. च. प्रा. वृ.	नयचक्र, प्राकृत-वृहत्, देवसेनाचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
24.	नि. सा.	नियमसार, आचार्यश्री कुन्दकुन्दस्वामी, कुन्दकुन्द भारती, फलटन, 1970
25.	नि.सा./ता.वृ.	नियमसार, तात्पर्यवृत्ति टीका, टीकाकार पद्मप्रभ मलधारी, श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, आगास
26.	पं. का.	पंचास्तिकाय, कुन्दकुन्द स्वामी, श्री अनेकान्त विद्वत् परिषद् लोहारिया.
27.	पं.का./ता.वृ.	पंचास्तिकाय, तात्पर्य वृत्ति, टीकाकार जनसेनाचार्य, श्रीअनेकान्त विद्वत् परिषद्, लोहारिया
28.	प. पं. वि.	पद्मनन्दि पंचविंशतिका, आचार्यश्री पद्मनन्दि, वीरसेवा मंदिर, दिल्ली.
29.	पं. सं.प्रा.	पञ्चसंग्रह-प्राकृत, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

30.	प. प्र.	परमात्मप्रकाश, आचार्य श्री योगीन्दुदेव, राजचन्द्र ग्रंथमाला, वि.सं. 2017
31.	प. प्र. / टी.	परमात्मप्रकाश, टीका, टीकाकार पद्मप्रभ मलधारी देव, श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, आगास.
32.	पु. सि.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, आचार्य श्री अमृतचन्द्र, श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, आगास
33.	प्र. सा.	प्रवचनसार, आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी श्री अनेकान्त विद्वत् परिषद लोहारिया
34.	प्र.सा. / ता.वृ.	प्रवचनसार, तात्पर्य वृत्ति, टीकाकार जयसेनाचार्य, श्री अनेकान्त विद्वत् परिषद्, लोहारिया
35.	बा. अ.	बारस-अणुपेक्खा, आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी, कुन्दकुन्दभारती, नईदिल्ली, 1990
36.	भ. आ.	भगवती-आराधना, आचार्यश्री शिवार्य, सखाराम दोशी, सोलापुर, 1935
37.	भ. आ. वि. टी.	भगवती-आराधना, विजयोदय टीका, श्री अपराजित सूरि, बालब्रह्मचारी श्री हीरालाल खुशालचंद दोशी, फलटन (महा.)
38.	भा. पा.	भावपाहुड, आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी, श्री अनेकान्त विद्वत् परिषद्, लोहारिया
39.	मू. आ.	मूलाराधना, भगवती-आराधना, टीका, पं. आशाधर
40.	मूला.	मूलाचार, वट्टकेराचार्य, अनन्तकीर्ति ग्रंथमाला, वि.सं.1776
41.	मो. पा.	मोक्षपाहुड, आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी, श्री अनेकान्त विद्वत् परिषद् लोहारिया
42.	र. क. श्रा.	रत्नकरण्डश्रावकाचार, आचार्यश्री समन्तभद्र स्वामी श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल, जबलपुर
43.	र. सा.	रयणसार, आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी, श्री अनेकान्त विद्वत् परिषद्, लोहारिया
44.	रा. वा.	राजवार्तिक (अपरनाम, तत्त्वार्थवार्तिक), आचार्यश्री अकलंक देव, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी-1944

45.	ल. सा.	लब्धिसार, आचार्य नेमिचन्द्र, श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, आगास.
46.	ल. सा. टी.	लब्धिसार, टीका, टीकाकार-नेमिचन्द्र, श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, आगास
47.	श्लो. वा.	श्लोकवार्तिक (अपरनाम तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक) आचार्यश्री विद्यानन्द स्वामी,श्री जीवराज ग्रंथमाला सोलापुर
48.	स्या. मं.	स्याद्वादमञ्जरी (मूल अन्ययोगव्यवच्छेद, श्री हेमचन्द्र सूरि कृत) श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, आगास
49.	स्या.मं./टी.	स्याद्वामञ्जरी अन्ययोग-व्यवच्छेद टीका, टीकाकार श्री मल्लिषेणसूरि, श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, आगास
50.	स. सा.	समयसार, आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी, श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल, आगास
51.	स. सा. / आ. टी.	समयसार, आत्मख्याति टीका, टीकाकार, श्री अमृतचन्द्राचार्य, परमश्रुत प्रभावक मंडल, आगास
52.	स. सा. क.	समयसारकलश, कलशकार - श्री अमृतचन्द्राचार्य
53.	स. सि.	सर्वार्थसिद्धि, आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी, भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, 1955
54.	स. श.	समाधिशतक, आचार्यश्री पूज्यपाद स्वामी, श्री अनेकान्त विद्वत् परिषद्, लोहारिया

उपसर्ग विजेता प.पू. गणाचार्य श्री 108 विराग सागरजी महाराज द्वारा लिखित, सम्पादित एवं संकलित तथा श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित सत् साहित्य

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
	लेखन साहित्य		
	संस्कृत टीका साहित्य		
1	**सर्वोदयी टीका (वारसाणुपेक्खा)** प.पू. आचार्य कुंदकुंद स्वामी के 2000 वर्ष प्राचीन वारसाणुपेक्खा ग्रंथ पर 'प्रथम बार' लिपिबद्ध की गई सर्वोदयी संस्कृत टीका। जो कि 21वीं सदी की प्रथम विशद व्याख्यान सहित टीका है। जिसमें सभी अनुयोगों के अनेक ग्रंथो से लिये गये आगमोक्त प्रमाणों के साथ मर्मस्पर्शी, विशद् तथा सरस, सुगम व्याकरण की परिशुद्धता के साथ-साथ अनेक उद्धरण व नवीन चिंतनो को अनुपम लेखन शैली के माध्यम से आगम के अमृत को परोसा गया है। इस ग्रंथ का विषय विश्लेषण आध्यात्मिक विकास का अमोघ सोपान है मात्र 3 माह 18 दिन में पू. गुरुवर द्वारा रचित यह कृति अपने सरलीकरण एवं भाषा सौष्ठव के कारण न केवल जन मानस अपितु बड़ें-बड़ें मूर्धन्य विद्वानों के लिये आकर्षण का केन्द्र बनेगी।	150	
	शोधपूर्ण साहित्य		
2	**शुद्धोपयोग** शुद्धोपयोग विषयक भ्रान्तिओं का जड़ से उन्मूलन करने वाली, लगभग 51 शास्त्रों के अन्वेषणपूर्ण गहन-मनन चिंतन तथा उनके लगभग 315 उद्धारणों से निर्मित आगमोक्त प्रमाणों से युक्त शोधपूर्ण कृति। जिस पर देश के विभिन्न प्रांतों के लगभग 150 से अधिक मूर्धन्य विद्वानों के समीक्षात्मक श्लाघनीय अभिमत प्राप्त हुए। जिसके अध्ययन से विद्वान जगत को एक सम्यक्‌दिशा का बोध मिला।	25	185
3	**सम्यग्दर्शन** द्वितीय शोधात्मक कृति, जिसमें सम्यग्दर्शन विषयक अनेकानेक शंका-समाधानों तथा अगमिक और अध्यात्म भाषा के द्वारा सराग-वीतराग, निश्चय-व्यवहार, प्रथमोपशम, द्वितियोपशम आदि लाक्षाणिक भेद-प्रभेद, उत्पत्ति आदि गहन विषयों का लगभग 54 आगमोपदिष्ट शास्त्रों के 322 उद्धरणों से पूरित, मिथ्यात्वांधकार का विनाश कर आत्मरुचि रुप सम्यग्दर्शन को उत्पन्न करने वाली अमूल्य कृति है।	35	128

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
4	**आगम चक्खू साहू** दिगम्बर मुनियों की समाचार विधि, आर्यिका चर्चा, पात्रभक्ति तथा यज्ञोपवीत संबंधी विषयों पर देश-समाज-संघ की पंथ-परम्परा के हठाग्रह से दूर, लगभग 50 ग्रंथों के सूक्ष्म अध्ययन से निकाले गए 257 उद्धरणों से परिपूर्ण संघस्थ साधु-साध्वियों की तत्ववार्ता रुप में एक अतिशयवान आगमोक्त शोधपूर्ण कृति।	25	135
5	**सल्लेखना से समाधि** आराधना, समाधि सल्लेखना विषयक लगभग 168 विषयों पर, भगवती आराधना आदि 25 शास्त्रों के खोजपूर्ण, अनेकानेक उद्धरणों से युक्त, मृत्यु महोत्सव की कला सिखाने वाली शोधपूर्ण अद्भुत कृति। जिसमें क्षपक निर्यापकों तथा निर्यापकाचार्य की क्रियाविधि, सल्लेखना-आत्मघात नहीं आदि भ्रान्तियों का निर्सन करने वाली सुन्दर यह प्रस्तुत कृति अति प्रशंसनीय है।	30	178
6	**संत साधना के प्रेरक प्रसंग** साधना काल के दौर मे गुजरते महत्वपूर्ण निज अनुभवों, प्रसंगों का लेखन। जिसमें साधक के पूर्व व पश्चात परिणति, आत्मप्रभावना से दूर धर्मप्रभावना ख्याति की भावना क्यो ? कैसे होती है ? इन सब वास्तविक स्थितियों का अनुभव परक लेखन है।	20	80
7	**परम दिगम्बर जैन मुनि** सम्प्रति काल में दक्षिणभारत जैसे देश के अनजान लोगों के लिए दिगम्बर संतों की अचल साधना - आराधना, परिचर्या, गरिमा-महिमा तथा उनके सम्मान व निंदा के फलों को परिज्ञान हेतु लगभग 68 ग्रंथों के तथा अन्य पत्रकों के आलेखन कर अथाह कठोर प्रयास से इस शोधपूर्ण कृति का सृजन हुआ। जिसमें हिन्दू, इस्लाम, सिक्ख, बौद्ध आदि धर्मो ने भी दिगम्बर मुनियों का समय समय पर सम्मान किया है इसका विवरण है।	45	150
8	**सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म** यह कृति जैनधर्म का गागर में सागरवत् संक्षिप्त परिचय के साथ ग्रंथों-पुराणों-कुरानों, उपनिषदों, इतिहास के पन्नों, प्राचीन-पुरातत्व विभागों, दर्शनों तथा विदेशी विद्वानों की दृष्टि में भी शाश्वत दिगम्बर जैन धर्म का सार्वभौमिक सम्मानीय अस्तित्व को उजागर करने वाली अलसक दीपस्तंभ सदृश। पू. गुरुवर द्वारा लिखित धर्म की असीम व्याख्याओं से परिपूर्ण है।	30	88

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
9	**तीर्थंकर दिव्य दर्शन** हमारें तीर्थंकर भगवतो के जीवन चरित्र से परिचित/अवगत कराने वाली लगभग 200 प्रश्नों के समाधान एवं त्रेसठ शलाका पुरुषों के विषय में विस्तृत अनेक ग्रंथों के प्रमाणों से पूर्ण, जानकारी के साथ यह एक अनमोल, सारगर्भित कृति है।	30	178
10	**तीर्थंकर दर्शन** तीर्थंकर दिव्य दर्शन पर ही आधारित 24 तीर्थंकरों के परिचय से परिपूर्ण लघु कृति है।		
11	**व्यसन विचार** व्यसन मुक्ति के मार्ग का दिग्दर्श कराने वाली हिन्दी, मराठी, इंग्लिश, भाषाओं में रुपान्तरित सामायिक उत्थान की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति है जिस में व्यसन से होने वाली हानियों तथा उनमें प्रसिद्ध व्यक्तियों की भयानक स्थितियों का चित्रण, आगम-विज्ञान तथा महापुरुषों के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।	25	102
12	**फूल नहीं, है कांटें** सप्त व्यसनों का ज्ञान, त्याग से लाभ, हानि, संबंधित कथाओं का विवरण।		50
13	**संस्कार सुरभि** बालकों के लौकिक विकास के साथ नैतिक विकास में सहायक एक सुरभि वत् बेहतरीन कृति है जिस में माता-पिता एवं बालकों के जीवनोपयोगी दैनिक चर्या तथा कर्तव्यों, संस्कारों का सम्यक् प्रकार से बोध कराया गया है।	18	87
14	**जिनेन्द्र दर्शन, जिनेन्द्र पूजन** एक श्रावकोचित् प्रभावक कृति, जिसमें सद्गृहस्थ के आवश्यक करने योग्य भगवान के दर्शन-पूजन की सागोपांग विधि का वर्णन है।	10	58
15	**आध्यात्मिक शंका-समाधान** शोधात्मक / खोजात्मक आयामों से परिपूर्ण, पक्षव्यामोह, दुराग्रह से दूर आगमोक्त अध्यात्म में प्रवेश कराने वाली एक लघु कुंजीवत्, साधनोपयोगी शोधपूर्ण कृति है। जिसमें नय, निश्चयनय, व्यवहारनय आदि 12 विषयों का पूर्ण विवरण 358 प्रश्नों के समाधान रुप में लगभग 42 शास्त्रों के अन्वेषण मनन से किया गया है।	30	140
16	**आध्यात्मिक तत्व-चर्चा** आगम और अध्यात्म के विवादग्रस्त विषयों पर तुलनात्मक अध्ययन	15	84

सं.	नाम		मूल्य	पृष्ठ
	रुप में एक वार्ता। जिसमें मुख्यतः मोक्ष मार्ग विषयक 17, सम्यकत्व विषयक 45, स्वात्मानुभूति विषयक 56-62 तथा स्वरुपाचरण विषयक 63-83, शंकाओं का समाधान काल्पनिक युक्ति से दूर, आगम प्रमाणों से किया गया है। इस कृति का उद्देश्य शिष्यों तथा साधकों को ठोस ज्ञान से परिपक्वकराना है।			
	चिंतन साहित्य			
17	**चैतन्य चिन्तन**	भाग-1	15	100
		भाग-2	15	100
		भाग-3	15	104
	साधकोचित् पू. गुरुवर के निज आत्मचिंतन की सरिता से उद्‌भूत हुए रत्नों सम चिंतवनों का लेखन।			
	बालोपयोगी साहित्य			
18	**बाल विज्ञान**	भाग-1	10	37
	(हिन्दी, इंग्लिश,	भाग-2	10	56
	मराठी, कन्नड)	भाग-3	10	56
		भाग-4	10	84
	धर्म परिज्ञान के प्रथम सोपान रुप में बालकों तथा युवाओं के लिए प्रारंभिक क्रमशः जानकारी से परिपूर्ण कृति है। जो हिन्दी, इंग्लिश, मराठी, कन्नड भाषा में रुपान्तरित हो जन-जन में लोकप्रिय है।			
19	**कर्म विज्ञान**	भाग-1		40
		भाग-2		44
		भाग-3		44
	हिन्दी, इंग्लिश भाषा में उपलब्ध, करणानुयोग में प्रवेश करने के इच्छुक स्वाध्यायप्रेमियों के लिए यह प्रथम पायरी है जिसमें कर्मसिद्धांत विषयक प्रारंभिक विषयों का सरल ढंग से लेखन किया गया है।			
	कथा साहित्य			
20	**नैतिक कथा मंजूषा**	भाग-1		85
		भाग-2		122
		भाग-3		
	आगमोक्त रुचिकर कथाओं का जनमानस में परिज्ञान कराने के लिए विभिन्न शास्त्रों से संकलित कर शिक्षाप्रद-बोधपूर्ण रुप में लिखी गई कथाओं का संग्रह। जिससे समाज में नैतिकता-धार्मिकता का विकास हो सके।			

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
	अनुवाद साहित्य		
21	**वारसाणुपेक्खा** आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी रचित वारसाणुवेक्खा ग्रंथ का सरल सुबोध अनुवाद।		144
22	**परमरत्नार्चना संग्रह** विनयपाठ से अर्घावलि, विसर्जन पाठ तक संपूर्ण पूजाविधि का अर्थ-अनुवाद।	20	129
23	**सामायिक पाठ** संपूर्ण आद्योपांत सामायिक विधि एवं सामायिक पाठ का अन्वयार्थ तथा भावार्थ।	10	48
	पद्य साहित्य		
24	**भावों के विशुद्ध क्षण** साधना काल के अमूल्य विशुद्ध अनुभवों-क्षणों का पद्यरचना लेखन।	15	104
25	**मुक्ताञ्जलि – भाग-1,2** अनेकानेक शिक्षापूर्ण मुक्तकों के लेखन का संग्रह।		
26	**नव देवता निर्वाण क्षेत्र पूजा** पू. गुरुवर द्वारा रचित नवदेवता निर्वाण क्षेत्र पूजा।		
	संकलित / सम्पादित साहित्य		
27	**साधना से समाधि** समाधि सल्लेखना के समय महत्वपूर्ण हिन्दी पाठ - स्तुतियों का संकलन।	20	123
28	**विमल नित्य पाठावलि** जिनेन्द्र पूजन सामायिक, प्रतिक्रमण आदि विषयों का संक्षिप्त रुप से संकलन।	25	200
29	**आराधना** श्रमणों व श्रावकों द्वारा किये जाने वाले नित्योपयोगी संस्कृत के पाठों का संकलन।	10	
30	**सुभाषित सहस्त्रं** नैतिक व धार्मिक मर्मों से परिपूर्ण सहस्त्र सुभाषित गाथाओं का संकलन।	40	336
31	**आप्त अर्चना** जिनेन्द्र पूजन - पाठ आदि का संकलन।		

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
32	**मानतुंगा की अमर भक्ति** (सचित्र भक्तामर) भक्तामर स्तोत्र के काव्यों, यंत्रों-मंत्रों के सचित्र सुन्दर चित्रण।	65	100
33	**साधना** जनोपयोगी हिन्दीभाषा के अनेक पाठों का संकलन।	10	
34	**अनुप्रेक्षा** आत्माचिन्तनोपयोगी अनित्यादि बारह भावनाओं की गाथाओं का अर्थ सहित संकलन।	10	40
35	**जिनागम दीप** आगम के नित्यपठनीय 25 ग्रन्थों का अर्थ सहित सम्पादन।	251	728
36	**सम्मेद शिखर विधान** तीर्थराज सम्मेदशिखर जी विधान का संकलन।		
37	**चारित्र शुद्धि व्रत** चारित्रशुद्धि व्रत की पूजा, जाप तथा कथादि की जानकारी का संकलन।	25	140
38	**करुणामूर्ति संत** करुणा अवतारी प.पू. आचार्यश्री 108 विमलसागर जी महाराज की जीवनी का संकलन।		341
39	**तपस्वी सम्राट** तपस्वी सम्राट प.पू. आचार्य श्री 108 सन्मतिसागर जी महाराज की जीवन का लेखन।		72
40	**यज्ञोपवीत विधि** यज्ञोपवीत संस्कार विधि की उपयोगिता, महिमा तथा ग्रहण विधि का संकलन।	25	
41	**साधना के सोपान**		
	एकांकी / नाटक साहित्य		
42	**सत्यमित्र-सत्यदृष्टि** पू. गुरुवर द्वारा रचित पात्रों की मुख्यता से नाटक का लेखन ।		
43	**प्रद्युम्न हरण** प्रद्युम्न हरण, नामक नाटक का लेखन, जिस में पात्रों के पाठों का अलग-2 विवरण है।		
	पू. आचार्य श्री पर आधारित साहित्य		
44	**विरागाभिवंदन अभिनंदन** सर्वाधिक पृष्ठों वाला, विभिन्न स्तरीय साधकों, भक्तगणों आदि के		

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
	पू. गुरुवर की आलौकिक व्यक्तित्व छव्य पर हृदयोद्‌गारों का संकलित, सचित्र / राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा वर्ष की बेला में प्रकाशित वृहद् दर्पण जीवनी।		
45	**निस्पृही संत** भाग-1 जन्म से सम्प्रतिकाल तक के संपूर्ण जीवन-चरित्र का साहित्यतिक सुबोध लेखन।	60	243
46	**विरागसेतु (महाकाव्य)** प्राकृत भाषा की पद्यरचना से गुंथित पू. गुरुवर के आदर्शमयी जीवन पर महाकाव्यमयी रचना।	100	344
47	**संत काव्य की परम्परा में आचार्य विरागसागर** पू. गुरुवर के व्यक्तित्व व कृतित्व पर डी. लिट् उपाधि से पुरस्कृत डॉ. लोकेश खरे की एक अद्‌भुत शोधपूर्ण कृति।	65	175
48	**कमल से महाकमल** अरविन्द से आ. विरागसागर तक की जीवन यात्रा का लघु प्रभावक लेखन।		
49	**घटनायें ये जीवन की** सम्पूर्ण जीवन में घटी अनेकानेक रोचक महत्वपूर्ण घटनाओं का लेखन।	80	336
50	**दिगम्बरत्व के चितेरे** सचित्र, बालगोपाल को आकर्षित करने वाला कॉमिक्स रुप में जीवन चरित्र।	150	
51	**विराग सिंधु की ऊर्मिया** पू. गुरुवर की अनुपम जीवनी पर आधारित सरस-सरल काव्यरचना।	15	91
52	**विराग वाटिका** पू. गुरुवर द्वारा दीक्षित शिष्य-सुमनों का सविस्तृत सचित्र परिचय।	41	154
53	**भक्ति की झंकार** गुरुभक्ति से पूरित धार्मिक बहुताधिक भजन-गीतों का संग्रह	25	158
54	**धर्म पीयूष** दशलक्षण पर्व में उत्तमक्षमादि दस धर्मों पर मुखरित पीयूष वाणी का संकलन।	30	136
55	**ऐसे चलो मिलेगी राह** दिशाविहीन जीवन को सम्यक् दिशा बोध कराने वाले मार्मिक प्रवचनों का संकलन।	40	180

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
56	**दूर नही है मंजिल** निज ध्येय का बोध करा मंजिल तक पहुँचाने (मोक्ष) वाले सारगर्भित प्रवचनों का संकलन।	30	227
57	**उड़ रे पंछी** पू. गुरुवर के मुखारविंद से गुंजित प्रवचनों का संकलन।		
58	**तीर्थंकर वर्धमान** भग. महावीर स्वामी का विभिन्न दृष्टियों एवं आगम के परिप्रेक्ष्य में जीवन परिचय।	15	80
59	**पहले देव-पूजा फिर काम दूजा** जिनेन्द्र प्रभु की पूजा, अर्चनाविधि के महत्व को उजागर करने वाले प्रवचनों का संकलन।	25	180
60	**तीर्थंकर ऐसे बनो** तीर्थंकर प्रकृति बंध में हेतु सोलहकारण भावनाओं का संकलित सविस्तृत प्रवचन।	60	157
61	**तट की ओर** हृदयस्पर्शी, जीवन की सच्चाई का दिग्दर्श कराने वाले प्रवचनों का संकलन।	54	
62	**सीर्फ दो प्रवचन** महत्वपूर्ण विशेष प्रवचनों का संकलन।	10	
63	**इष्टोपदेश** अध्यात्मप्रेमियों के आध्यात्मिकता के विकास में सहायक इष्टोपदेश ग्रंथ पर संकलित प्रवचन।		
64	**मानतुंग की अमरभक्ति** भक्तामर स्तोत्र पर भक्ति से ओतप्रोत, भावभीने प्रवचनों का संकलन।	150	241
65	**कल्याणक महोत्सव** अनेकानेक स्थानों पर हुए गर्भादि कल्याणकों के विशेष प्रवचनों का संग्रहीकरण।	20	104
66	**दान तीर्थ** आहारदान की आद्योपांत महिमा, विधि, गुण, दोष, पात्र, फल आदि का वर्णन।	20	88
67	**धर्म के दश सोपान** मूढ़बिद्री मे हुए दशधर्मों के प्रवचनों का सरस-संक्षिप्त संकलन।	20	105

सं.	नाम		मूल्य	पृष्ठ
68	**जीवों पर दया करो, शुद्ध शाकाहार करो** अहिंसा शाकाहार सम्मेलनों मे हुए आगमिक व वैज्ञानिक तुलनात्मक प्रवचनों का संकलन।		20	106
70	**बुराईयाँ ही जेल, अच्छाईयाँ ही मुक्ति** विभिन्न जेलों में हुए, अपराधबोध कराने वाले मार्मिक प्रवचनों का संकलन।		10	45
71	**प्रवचन वर्षा** महत्वपूर्ण वर्षभर के जैन पर्वों पर होने वाले उपदेशामृत का संकलन।		15	121
72	**कर्तव्य मेव कर्तव्यं** श्रावकों के षडावश्यक कर्तव्यों पर आधारित हृदय उद्‌गारों का संकलन।		25	120
73	**श्रद्धा प्रसून** मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन के आठ अगों के प्रवचनों का संकलन।		25	128
74	**मोक्ष की राह** मोक्षपथिकों को मोक्षपथ का पाथेय प्रदान करने रुप प्रवचनों का संकलन।			125
75	**विरागामृत** पू. गुरुवर की अमृतवाणी से मुखरित अनेक विषयों पर संकलित उद्धरण।			150
76	**समाधि तंत्र** अध्यात्मरस से परिपूर्ण समाधि ग्रंथ पर हुए सविस्तृत प्रवचनों का संकलन।			
77	**समयोचित् शिक्षायें**	भाग–1	20	105
		भाग–2	20	46
		भाग–3	20	58
	व्यक्तित्व विकास में कारण, समय–2 पर दी गई अमिट शिक्षाओं का संकलन।			
78	**विराग मंथन** लघु, पर ज्ञान को विकसित करने वाली आकर्षिक उद्धरणों से पूरित कृति।		5	32
79	**रजत पुष्प**		51	184

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ
	सद्‌गुणों के विकासादि विषयों से परिपूर्ण जनोपयोगी प्रवचनों का संकलन।		
80	**कहानी सबसे सुहानी** पू. गुरुवर के प्रवचनों में से संकलित मनभावन कहानियों का संकलन।	30	240
81	**अक्षय निधि** हृदय पर सीधा प्रभाव करने वाले गूढ़रहस्यात्मक प्रवचनों का संकलन।	10	36
82	**संस्कार की लहरें** नैतिक तथा धार्मिक सुसंस्कारों की सुरभी से महकित प्रवचनों का संकलन।	20	85
83	**चलो चले प्रभुदर्शन को** आगमिक तथा वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर प्रभुदर्शन की आद्योपांत विधि रुप प्रवचन।	30	88
84	**आध्यात्मिक धर्म प्रवचन** दशलक्षण धर्म से सबंधित गाथाओं, कहानियों, मुक्तकों तथा उद्धरणों का विस्तृत प्रवचन संग्रह।		147
85	**घर-घर की कहानी** पारिवारिक एक–दूसरे सदस्यों के कर्तव्यबोध कराने वाले प्रवचनों का संकलन।	103	

: प्राप्ति स्थान :

श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ

भिन्ड (म.प्र.)

फोन : 0975980322

✲ प्रसंग : प.पू. गणाचार्य श्री **108** विराग सागर जी महाराज ससंघ (**36** पिच्छि) का गुजरात प्रांत की राजधानी गाँधीनगर चातुर्मास के पावन अवसर पर

✲ रचना : सम्यग्दर्शन

✲ रचनाकार : प.पू. गणाचार्य श्री **108** विराग सागर जी महाराज

✲ संपादक : प्रोफेसर (डॉ.) सुदर्शनलाल जैन
पूर्वमंत्री, अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद

✲ भाषा : हिन्दी (पादटिप्पणीया-प्राकृत एवं संस्कृत)

✲ ग्रंथ-प्रमाण : प्राकृत-संस्कृत में लिखित जैनागम

✲ संस्करण : प्रथम, **2001** गया (बिहार) **1000** प्रतियाँ
द्वितीय, **2001** गया (बिहार) **1000** प्रतियाँ
तृतीय, **2001** भिण्डर, (राज.) **1000** प्रतियाँ
चतुर्थ, **2007** नागपुर (महा.) **1000** प्रतियाँ
पंचम, **2009** गांधीनगर (गुज.) **2000** प्रतियाँ

✲ पुण्यार्जक : श्री अशोककुमार जैन, श्रीमति प्रतिमा जैन
श्री जिनेन्द्र जैन, श्रीमति सपना जैन
गोरेगाँव-ईष्ट, मुंबई, (महा.)

✲ प्राप्तिस्थान : श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन विराग विद्यापीठ
बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

✲ मुद्रक : श्री पारस ट्रेडर्स, नीतिनभाई बी. शाह
निर्माण हाउस, उस्मानपुरा, अमहादाबाद-13.
फोन : 30024414 98795 24858
paras4414@yahoo.co.in

✲ मूल्य : (35-00) पच्चीस रुपया

अंत में परिशिष्ट में संकेत एवं संदर्भ ग्रंथ-सूची दी गयी है। उद्धरणों में तथा मूलपाठ में जो प्रूफ-रीडिंग संबंधी या-भाषा संबंधी अशुद्धियाँ रह गई थीं उन्हें यथाशक्य ठीक किया गया है। कई उद्धरणों को मूलपाठ से मिलाया गया है, क्योंकि कुछ स्थानों पर 'न' छूट जाने से, 'हल्' का चिन्ह छूट जाने से विपरीत अर्थ हो गया था। संकेत-सूची, संदर्भग्रंथ-सूची, उद्धरणों आदि को नवीनरूप से संयोजित किया गया है। कहीं-कहीं वचनिका हिन्दी का प्रयोग था जिसे आधुनिक साहित्यिक हिन्दी में परिवर्तित किया गया है। प्रस्तावना के माध्यम से आचार्यश्री जी के आशय को प्रकारान्तर से प्रस्तुत किया गया है। वहाँ उद्धरण इसलिए नहीं दिये गये हैं, क्योंकि आचार्यश्रीने यथावसर उद्धरण दिये है।

मैं आचार्य जी का ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे इस योग्य समझा और यह दायित्व सौंपा। इस कार्य से मेरे ज्ञान में वृद्धि हुई है। आचार्य श्री जी से समय-समय पर मार्गदर्शन मिलता रहा है। इस कार्य के संपादन में ब्र. पंकज जैन जी को नहीं भुलाया जा सकता है, क्योंकि पत्राचार आपके माध्यम से ही होता था। संघस्थ सभी साधु एवं साध्वियों का भी मुझे आशीर्वाद रहा है। अत: उनका भी कृतज्ञ हूँ। मेरी धर्मपत्नी डॉ.मनोरमा जैन धन्यवाद की पात्र है जो मुझे सदा प्रेरणा एवं सहयोग देती रहीं। मैं अपने गुरु प्रोफेसर उदयचंद्र जी का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने शुभाशीष लिखकर मेरा उत्साह बढ़ाया। डॉ.कमलेश कुमारजी तथा पं.धनपाल म.हाबळे जी का भी आभारी हूँ जिन्होंने अपना अभिमत लिखा। ग्रंथ का प्रकाशन तब तक संभव नहीं है जब तक अर्थ सहयोग न हो, एतदर्थ मैं गोरेगाँव मुंबई निवासी श्री अशोककुमार जैन एवं जिनेन्द्र जैन का विशेष आभारी हूँ, आपने अपनी प्रशंसा से दूर रहते हुए अर्थसहयोग दिया है, पूर्व में भी दिया था। अक्षरसज्जा, मुद्रक एवं प्रकाशक को भी धन्यवाद देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने इस ग्रंथ को यह रूप दिया है।

मैं पुन: सभी आचार्यों, मुनियों एवं विद्वानों से नम्र निवेदन करता हूँ कि अपने बहुमूल्य सुझावों से हमें उपकृत करेंगे, क्योंकि शास्त्ररूपी समुद्र से रत्न का निकालना अतिकठिन है। कहा है – 'को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे'।

अंत में प.पू.आचार्यश्री के प्रति प्रणामाञ्जलि-

सद्धर्मानन्दपूर-प्रसृत-सुरसरित्याप्लुताखर्वभावं,
निर्व्याजं भीतिशून्यं प्रवचनमतुलं ज्ञानविज्ञानतत्त्वम्।
लोकानां प्राप्य कर्णौ झटिति निरसयद् दोषपुञ्जं मन:स्थं,
जीयादाचारपोषं जगति सकल-शास्त्रज्ञ-वैराग्यमूर्ते: ॥

दीपावली, वी.नि.सं.**2529** (प्रोफेसर सुदर्शनलाल जैन)
दिनाँक : **4/11/2002** उपाध्यक्ष, अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद्

सम्यग्दर्शन कृती पन् देश के विभिन्न मूर्धन्य
वीद्धानो के समीक्षात्मक अभिमत

प.पू.गणाचार्य श्री विरागसगारजी महाराज कृत 'सम्यग्दर्शन' कृति गागर में भरा अध्यात्म सागर से मन्यित नवनीत है कृतिकार ने जैनागम का तलस्पर्शी अध्ययन व चिंतन-मनन कर आत्मसात किया है साथ ही परोक्ष और प्रत्यक्ष रुप में वर्तमान समाज और मानव की मन: स्थिति को अपनी पारखी दृष्टि से अलोकत कर 'सम्यगदर्शन' कृति की रचना की है जो अत्यधिक उपयोी और प्रमाणिकता से पूर्ण है। कृति की प्रस्तावना बोधवर्धक है, जिज्ञासा, जिज्ञासा उत्पन्न कराने वाली है। अष्ट अध्यायों में सम्यग्दर्शन की सारगर्भित मीमांसा क्रमश: उद्‌बोचित है, प्रश्नोतर में सरल और ग्राह्य शैली प्रवाहीत है विविध आगम ग्रंथो के उदाहरण प्रस्तुत किये गये है जो पाठको की जिज्ञासा एवं सम्यक्तव की दृढ़ता को वृद्धिगत करते है मिथ्यादर्शन की विवेचना आस्था को परिमार्जित कर विशुद्धता को बढ़ाती है तुतीय अध्याय में सम्यगदर्शन की विवेचना आस्था को परिमार्जित कर विशुद्धता को बढ़ाती है तृतीय अध्याय में सम्यग्दर्शन का लक्षण, उत्पत्ति एवं भेद-प्रभेद का सारगर्भित वर्णन है। आगे औपशमिक, क्षायोपशमिक एवं क्षाविक सम्यग्दर्शन की गूढ़ता को उद्‌धाटित किया है जिससे मुमुक्षु पाठक के श्रद्धान में दृढ़ता की बढ़ोत्तरी होती है व्यवहार व निश्चय सम्यग्दर्शन को आगम व अध्यात्म की दृष्टि से रहष्योद्‌धाटित कर हृदय में स्थापित किया गया है सम्यग्दर्शन के गुण अंग अतिचार और दोष बताकर भव्यात्माओं के श्रद्धान को विशुद्ध किया गया है। उपसंहार के रुप मेंकृतिकार ने मुमुक्षु पाठक को पुन: आत्मावतोकन कराया है।

जैनचार्यो ने सम्यग्दर्शन की विस्तृत से विस्तृत तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचना की है, कृतिकार ने उन्हे पढ़ा है गुना है तथा आत्मसात कर अनुभव की भट्टी में पुन: पुन: तपाया है तत्पश्चात स्व शिष्यो पर प्रयोग किया है, अभीष्ट प्राप्ति में सफलता ली है तथा भव्य भक्तो को दिलाई है यही कारण है कि कृती प्रांजल होते हुये भी सरल सहज औरस मान्य रुप से बोधगम्य है।

समीक्षात्मक दृष्टि से कृतिकार अपनी बात कहने में सफल रहे हे, कृति की सार्थकता अनुपमेय है यह लधुकृति अध्यात्म की संजीवनी हे जिसे भव्यात्मन उदरस्थ कर अजर-अमर अजन्मा बन सकते है ऐसी सुकृ कि को प्रत्येक भव्य मानव को अध्ययन कर आत्मसात करना चाहिए कृती लोकप्रिय उपयोगी तथा संग्रहणीय है। ऐसी प्रमाणित प्रस्तुति के लिये कृतिकार साधुवाद के पात्र है, ऐसे विशिष्ट सन्त के चरणो में सविनय नमोस्तु।

डॉ. विमला जैन 'विमल'
फिरोजाबाद (उ.प्र.)

e:\ samyagdarshan final 24-11-09

'सम्यगदर्शन' कृति के कृतिकर ज्योतिपुञ्ज प.पू.गणाचार्य श्री १०८ विरागसागरजी महाराज जैन दर्शन के मर्मक्ष मनीषी एवं अनुभवी आचार्य है वे स्व-परकल्याणकारी संत है भेद विज्ञानी है सम्यग्दर्शन के ज्ञाता, गंभीर ज्ञानी तथा सम्यक् आचारवात रत्नात्रयधारी मुनियों के स्वामी गणाचार्य हैं। 'सम्यग्दर्शन' रचना उनके गंभीर चिंतन, स्वाध्याय का प्रतिफल है।

कृतिकार, आगम और अध्यात्मके अध्येता है गम्भीर अध्ययन होने से उन्होंने अपनी कृति में आगम और अध्यात्म के सर्वत्र प्रमाण दियें है। प्रामाणिक संदर्भो से सहित कृति के ऐसी आध्यात्मिक रचनाएँ बहुत कम देखने में आयी हैं। कृति की दूसरी विशेषता है संबंधित विषय की परिपूर्णता।

कृति की विषय सामग्री को आठ भागों में सन्दर्भ सहित विभाजित किया गया है विभाजन के माध्यम से कृति को सरल और बोधगम्य बनाया गया है।

कृतिकार आचार्य और सम्पादक दोनो मनीषी है बुन्देली भूमि के लाल है, जैन दर्शन के भाल है बुन्देल भूमि के गौरव ही नहीं, आन, बान और शान है। आचार्य श्री बुन्देलभूमि के प्रथम आचार्य है। सत्यं-शिवं-सुन्दरम् को आचार्य श्री ने हृदयंगम किया है।

प.पू.आचार्य श्री को मन-वचन-काय से त्रय बार नमोस्तु।

वीनीत

(डॉ.) कस्तूरचन्द्र 'सुमन'

बुदेलखंड के प्रथम आचार्य श्री १०८ विरागसागरजी महाराज ने गंस्थ को लघु शोध प्रबंध के रुप में प्रस्तुत कर अपनी अनुपम प्रतिमा का परिचय दिया है। ग्रंथ अपने आप में पूर्ण है। सम्यग्दर्शन आत्मा का स्वभाव है अत: उसे मोक्षमहल वाले साधक ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए पुरुषाथ करते है। उसी दुर्लभ सम्यग्दर्शन से संबंधित संपूर्ण जिज्ञासाओ के समाधान हेतु प.पू.आचार्य श्री ने अथक परिश्रम के द्वारा 'सम्यग्दर्शन' ग्रंथ आठ अध्यायों में समाहित है। प्रथम अध्याय में सम्यग्दर्शन की महिमा, द्वितीय अध्याय में निथ्यादर्शन, मिथ्यादृष्टि के भेद प्रभेद तथा मिथ्यादृष्टि की विशेषताएँ है।

तृतीय अध्याय में सम्यग्दर्शन का लक्षण उत्पत्ति एवं भेद प्रभेदो का वर्णन है। प्रथमानुयोग चरणानुयोग से चिंतन है।

अतुर्थ अध्याय में करणानुयोग की दृष्टि से उपशम क्षयोपशम तथा क्षाविक सम्यग्दर्शन का विवेचन किया गया है।

पञ्चम अध्याय में आगम तथा अध्यात्म की दृष्टि से सम्यग्दर्शन का ज्ञान कराय गया है।

षष्ट अध्याय में सम्यग्दर्शन के गुण, अंग, अतिचर तथा दोषो का विवेचन है।

सप्तम अध्याय में सम्यगदृटि की विशेषताएँ

अष्टम अध्याय में उपसंहार है। अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी गई है।

प.पू. आचार्य श्री द्वारा लिख्रित ग्रंथ पर समीक्षा लिखना, सुझाव दे पान मुझ अल्पबुद्धि क्षयोपशम ज्ञान युक्त के लिये साध्य नहीं। ग्रंथ के पाँच संस्कारण निकल जाना ही लोकप्रियता का प्रमाण है। अधिकाधिक व्यक्ति ग्रंथ क स्वाध्याय मनन चिंतत करें, अपने को सम्यादृष्टि बनाने का पुरुषार्थ करें। अमूल्य कठीनता से प्राप्त मानव जीवन को सफल बनाये ऐसी भावना है।

डॉ. नेमीचंद्र जैन (से.नि. प्राचार्य)

खुई (म.प्र.)

गुरुवर गणाचार्य श्री १०८ विरागसागरजी महाराज ने आत्मशोचन के नये मानदण्ड संस्थापित किये। उदात्त चिंतन की उर्जस्वी द्वारा को प्रवाहमान कर तत्वज्ञान को नूतन व्याख्याओं से समद्ध किया वहीं आत्मतीयता और संवेगशीतता को जन-जन तक विस्तीर्ण कर भगवान महावीर की सत्वेषु मैत्री की अवधारणा को पुष्पित, प्रल्लवित और संदर्भित किया आप जैन परंपरा के नुन्नायक, निस्पृह योगी वात्सल्यरत्नाकर उपसर्ग विजेता आदि उाधियों से विभूषित जैन धर्म की पताका कहराने वाले श्रेष्ठ आचार्य है। 'सम्यग्दर्शन' जैसो महत्वपूर्ण शोध ग्रंथ पर आपका अथक परिस्म अन्तित्मरणीय है कृति के पठन-पाठन से श्रावको को नई जागृति व अभिरुपि उत्पन्न होगी। सभी विषय सरत्त तरीके से जन-जन को आत्मसात हो सकेगे श्रावक वर्ग के लिये कृती ज्ञान की अतुलनीय खान है।

विजय हितकारी 'रीठी'

प.पू. राष्ट्रसंत गणाचार्य श्री विरागसागरजी महाराज के दर्शन करने का प्रथम सौभाग्य बीना में ही प्राप्त हुआ जब सन् १९९४ में प.पू. आचार्य श्री के सानिध्य में धवला ग्रंथ के ५ वें भाग की वाचना बड़ी बजरीया जैन मंदिर बीता में प्रारंभ हुई तो डॉ. दरबारी लाल जी कोठिया न्यायाचार्य तथा प.दयाचंद्र जी साहित्याचार्य (अजयगढ़वाले) के साथ मुझे भी उस वाचना में सम्मिलित होने का सुअवरस प्राप्त हुआ था तभी से प.पू.आचार्य श्री। में अगाश्री विद्वता के भंडार को देखकर मुझे उनके दर्शन करने और चरणस्पर्श करने की भावना बार-बार बनी रहती हे, उनके चरणो में बारंबार नमोस्तु।

सम्यग्दर्शन ग्रंथ को आपने आठ अध्यायों में लिखकर बहुत ही सुंदर तरीके से प्रत्येक अध्याय को भय भेद - प्मेदो के संयोजिन कर बहुत अच्छा किया। जिस सरल रीति से प.पू. आचार्य श्री ने ग्रंथ से संक्षेप भाषा में लिखा और संपादक महोदय री सुदर्शनलाला जैन वाराणली की प्रस्तावना तो सोने में सुहाग का काम कर गई। इससे अधिक और क्या लिखा जा सकता है कि जिस ग्रंथ के पाँच-पाँच संस्करण निकल चुके हो और आगे भी पढ़ने की आवश्यकता बनी रहती हो तो उसके विषय में और अधिक क्या लिखा जाये। सम्यग्दर्शन कृति पर प.पू. आचार्य श्री द्वारा किया गया भरपूर श्रम स्हुत्य है।

उदयचंद्र शास्त्री, बीना